कथा साहित्य में म.प्र.का योगदान एवं अन्य आलेख

गोवर्धन यादव

अनुक्रम.

....

1

कथा साहित्य में मध्यप्रदेश का योगदान

------- --------------------------------------

तकरीबन ढाई-तीन दशक तक कविता की कुंज-वाटिका में रमण करते रहने के बाद मैंने कहानी जैसी कठोर भूमि पर चलने का दुस्साहस किया था. यह अनायास नहीं बल्कि सायास हुआ था. होता यह था कि वरिष्ठ होने के कारण किसी कार्यक्रम में मुख्य अतिथि अथवा अध्यक्ष बना दिया जाता. काव्यपाठ में सहभागिता करने वाले मित्रगण अपनी कविता सुनाते और फ़िर लघुशंका का इशारा करते हुए अपनी जगह से उठ खडॆ होते. और एक बार कमरे के बाहर कदम रखते तो फ़िर दुबारा लौटकर नहीं आते. एक तो यह कारण था और दूसरा यह कि उस समय तक मैं छॊटी-मोटी पत्र-पत्रिकाओं में शान से छप रहा था. मन में तरंग उठी कि किसी बडी पत्रिका में अपना भाग्य आजमाऊँ. मैंने एक आलादर्जे के संपादक के नाम, जो मेरे आदर्श रहे हैं, कुछ कविताएँ भेजी कि इसे अपनी पत्रिका में स्थान दें. जब उनसे प्रत्यक्ष भेंट हुई तो उन्होंने कहा कि अब इस तरह की कविताओं के दिन फ़िर गए हैं, यदि कोई अकविता लिखी हो तो भेजे, उसे स्थान जरुर मिल जाएगा. आपको शायद याद होगा कि यह वह समय था जब कविता औरअकविता के बीच एक अघोषित युद्ध चल रहा था. मैंने उसमे हाथ आजमाया लेकिन मैं उसमें सफ़ल नहीं हो पाया. ऎसा भी नहीं है कि मैंने उस तरह की कविताएं नहीं लिखी. लिखी जरुर लेकिन वे विष्णु खरे, लीलाधर मंडलोई, चन्द्रकांत देवताले, अथवा मोहन डहेरिया जैसी लिखी तो बिल्कुल भी नही गई थी. मेरे लिए एक निराशा का समय था यह. फ़िर मैंने कहानी लिखने का मानस बनाया. मेरी पहली कहानी" एल मुलाकात" जो शुरु से ही एक रहस्य लिए हुए होती है जो अंत तक रहस्यमयी बनी रहती है. इसका नायक "समय" होता है, से अचानक मुलाकात होतीहै. वह मेरे बारे में सब कुछ जानता है और मुझसे कहता है कि मैं तेरा बचपन का साथी हूँ. लंबे समय तक साथ बने रहने के बाद भी मैं उसे पहचान नहीं पाता हूँ. कहानी के अंत में एक अप्रत्याशित घटना घटती है और वह सारे रहस्यों पर से पर्दा उठाता है. यह कहानी "कहानी" के क्षेत्र में अत्यंत सफ़ल कहानी रही. मुझे काफ़ी प्रशंसाएं मिली और अनेकानेक पत्र पाठकों से प्राप्त हुए. इस कहानी के सफ़लतापूर्वक लिखे जाने के बाद से मेरे मानस पटल पर छाया कुहासा छटने लगा था. इसके बाद मैंने पीछे मुडकर नहीं देखा. मेरा पहला कहानी संग्रह " महुआ के वृक्ष" पंचकुला हरियाणा से प्रकाशित हो कर आया. उस संग्रह पर लगभग पैंसठ समीक्षाएं मुझे प्राप्त हुईं. पाठक मंच

द्वारा आयोजित कार्यक्रम में भोपाल से मेरे कथाकार मित्र श्री मुकेश वर्मा, श्री बलराम गुमास्ता श्री बलराम गुमास्ता, श्री मोहन सगोरिया, नागपुर से श्रीमती इंदिरा किसलय ने आकर उसे ऊँचाइयाँ दी. सभाग्रह में करीब ढाई सौ मित्रों की उपस्थिति रही. दूसरा संग्रह "तीस बरस घाटी" वैभव प्रकाशन रायपुर से प्रकाशित हुआ. इस संग्रह में मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन भोपाल के मंत्री-संयोजक सम्मानीय श्री कैलाशचन्द्र पंतजी ने दो शब्द लिखे और इस संग्रह का विमोचन देश के प्रख्यात कवि-मंत्री-सांसद सम्मानीय श्री बालकवि बैरागीजी के हस्ते "हिन्दी भवन"भोपाल में हुआ. यह मेरे लिए अब तक की सबसे बडी सफ़लता थी. तीसरा कहानी संग्रह " आसमान अपना-अपना" शैवाल प्रकाशन गोरखपुर में प्रकाशाधीन है. इसी बीच लगभग सौ लघुकथाएं भी मैंने लिखी है और इसे पुस्तकाकार होने में समय लग सकता है. इस लघुकथाओं पर भी माननीय श्री पंतजी ने अपना आशीर्वाद दो शब्द लिखकर दिया है. मेरी प्रायः सभी रचनाएं देश-प्रदेश की हर बडी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है. इससे लाभ यह हुआ कि मेरे हर प्रांत में मित्र्रों की फ़ौज खडी हो गई हैं. जगह-जगह से मुझे आमंत्रित किया जाता है और इस तरह करीब अठारह संस्थाओं ने मुझे सम्मानीत किया है. इसका सारा श्रेय मैं पंतजी को देना चाहता हूँ. अगर मेरा जुडाव राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से न हुआ होता तो शायद ही मैं इतनी ऊँचाइयाँ छू नहीं सकता था.

मित्रों, मैंने अब तक करीब तीस समीक्षाएं लिखी है. जब कहानी लिखने का मन नहीं होता है तो विभिन्न विषयों पर लेख-आलेख लिखता रहता हूँ. आज इन्टर्नेट का जमाना है, विभिन्न ईमेल पत्रिकाओं में इनका प्रकाशन होता रहता हैं. अब तो कुछ विदेशी ईमेल पत्रिकाओं में भी मेरी कहानियाँ, लघुकथाएँ लेख-आलेख प्रकाशित होते रहते हैं.

देश के ख्यातनाम कहानीकारों की कहानियों के अलावा प्रदेश के अनेक कहानीकारों को पढने का सुअवसर मिला है.पद्मश्री मान.श्री रमेशचन्द्र शाहजी, श्रीमती ज्योत्सना मिलन, गोविन्द मिश्रजी, रमेश दवेजी,श्रीमती मेहरुन्निसा परवेज जी,महेश अनघ, सूर्यकांत नागर,शशांक, भालचन्द्र जोशी, ए असफ़ल, राजेन्द्र दानी, ज्ञानरंजनजी, हरिभटनागर, तरुण भटनागर, अजीत हर्षे, स्वाति तिवारी ,उर्मिला शिरीष, उदयन बाजपेयी, युगेश शर्माजी, मालती शर्माजी, मालती जोशीजी, उदयप्रकाश, रामचरण यादव, .रामसिंह यादवजी, डा.पुन्नीसिंहजी, अमरनाथजी, नवल जायसवालजी, प्रभु जोशीजी, ध्रुव शुक्लजी, छिन्दवाडा के श्री हनुमंत मनघटेजी, दिनेश भट्टजी, राजेश झरपुरेजी, स्व. मनीषरायजी, आदि-आदि ,फ़ेहरिस्त काफ़ी लंबी हो सकती है. ये सारे कथाकार अपनी लेखनी के बल पर पूरे देश में जाने जाते हैं. इन सबकी कहानियाँ जहाँ अपने काल का अक्स प्रस्तुत करती हैं वहीं वे समाज की विकृतियों को दूर करने का आगाह भी करती है. या यह कहें कि समग्र अर्थों में अपने युग की कडवी सच्चाई को प्रस्तुत करने का सफ़ल कार्य कर रही हैं. माननीय रमेशचन्द्र शाहजी की कहानी " अभिभावक" पश्चिमी माडल पर आधारित आज की शिक्षा प्रणाली, अभिभावकों की दोहरी मानसिकता और उच्च आकांक्षाओं के बीच पिसते बच्चो के बचपन का मार्मिक विवेचन करती है. आपकी लेखनी का जादू पाठक के दिल-दिमाक पर गहरा असर डालती है, वहीं आपकी शब्द संपदा, शब्द सामर्थ्य, चिंतन बोध, भाषायी सुचिता की बानगी देखते ही बन पडती है. निःसंदेश यह आपके धीर-गंभीर लेखन का परिणाम है. ज्योत्सना मिलनजी की कहानी "चीख के उस पार"

प्रभावशाली है. उर्मिला शिरीष की कहानी "तमाशा" एकदम नए विषयवस्तु पर लिखी समाज की सच्चाई को बयां करती महत्वपूर्ण कहानी है. सम्मानीय श्री रमेश दवे की कहानी "भुल्लकड" रिटायरमेंट पर लिखी कहानी है, उसी तरह आपकी एक कहानी "खबरें"आज के अखबारों में पसरी मानसिक उदासी को प्रस्तुत करती है. कि अब अखबार पढने की चीज नही रह गयी है. कहानी का नायक अपनी पत्नि गायत्री से कहता है–नहीं-नहीं गायत्री अब खबरे नहीं पढी जाती-अच्छा तो कल से अखबार बंद कर दो" काफ़ी गहरा असर पाठकों के दिल-दीमाक पर छोडती है. मालती जोशी की कहानी "विषपायी" बेटी-बेटे के बीच दृष्टिभेद पर लिखी मार्मिक कहानी है, जिसने समाज का बेडा गर्क कर दिया है. मेहरुन्निसा परवेज की कहानी " अपने होने का अहसास" अंधविश्वास पर लिखी कहानी है. सूर्यकांत नागर की कहानी "विभाजन" तथा बेटियां" प्रभावकारी है.श्री ज्ञानरंजनजी की कहानी "पिता" पिता पर लिखी अब तक की तमाम कहानियों पर भारी पडती है. मंगला रामचन्द्रण की कहानी "मिन्नी बडी हो गई"-"भावनाएं अपाहिज नही होतीं," "हम होंगे कामयाब", श्री मुकेश वर्मा की कहानियां खेलणपुर, साक्षात्कार, होली, न्यायाधीश, रात, अन्ना, कस्तवार प्रभावशाली है. इस पर मैंने समीक्षा भी लिखी थी.

साहित्य समाज का दर्पण तो है ही साथ ही वह एक ऎसा प्रकाश स्तंभ भी है जो समाज को दिशा देखाने का कार्य भी संपादित करता है. उसका कारण यह है कि साहित्य में जहाँ एक ओर जीवन के लिए आदर्शों की प्रस्तुति की गुंजाइश होती है, तो दूसरी ओर वह समाज में व्याप्त आनियमितताओं, विकृतियों, प्रतिकूलताओं रोजमर्रा की कशमकशताओं, उसमें बिंधी इच्छाएं, आकांक्षाएं, विस्मृतियों, विडम्बनाओं, उत्पीडन, तथा अन्यान्य बुराइयों पर प्रहार करने का माद्दा भी होता है.

जहाँ तक समकालीन कहानियों का प्रश्न है तो इस समय की कहानियां समग्र अर्थों में अपने युग की कडवी सच्चाई को प्रस्तुत करने का सफ़ल कार्य कर रही है, वह आम आदमी के पक्ष में खडी दिखाई देती है. वर्तमान समय में जहाँ चारों ओर भ्रष्टाचार ताडंव कर रहा है,जहां बलात्कार मामुली सी चीज बन कर रह गई है, जहां भूख, कराह और विसंगतियों का माहौल है, समकालीन लेखकों द्वारा अधिकारपूर्वक कलम चलाई जा रही है. आज की समकालीन कहानिया जहां एक ओर साम्प्रदायिकता के विरुद्ध शंखनाद छेडॆ हुए है. वहीं वह ईष्या, द्वेष, झूठ ,छल, फ़रेब, राजनीति में अपराधिकरण, जनप्रतिनिधियों का चारित्रिक पतन ,गिरते जीवन मूल्यों, आहत होती भावनाओं पर जमकर लिखा जा रहा है.

उपरोक्त उदाहरणॊ से यह बात स्पष्ट होती है कि आज के कथाकार अपने दायित्वों का निर्वहन बडी शिद्दत के साथ कर रहे हैं अतः यह कहा जाना की आज की कहानियों में समकालीनता बोध का किंचित भी अभाव है,तो यह सर्वथा अनौचित होगा. यह बात निर्विवादरुप से कही जा सकती है कि आज की कहानियां युगानुरुप है, बल्कि वर्तमान की आवश्यक्ताओं के अनुकूल भी है.

(2)

हिन्दू-विवाह पद्दति में संस्कारों की महत्ता

संसार की प्रत्येक वस्तु, स्वयं को दिव्य, भव्य तथा आकर्षकरुप में प्रस्तुत करने के लिए संस्कार की अपेक्षा रखती है. संस्कार का अर्थ ही-परिमार्जित रुप में प्रस्तुति है. संस्कार वैज्ञानिक अवधारणा के रुप में विकसित भारतीय जीवन-पद्दति की सर्वाधिक स्पृहणीय, सर्वस्वीकृत एवं महत्वपूर्ण आनुष्ठानिक प्रक्रिया है. संस्कारों के द्वारा वस्तु या प्राणी कॊ और अधिक संस्कृत, परिमार्जित एवं उपादेय बना ही इसका मुख्य उद्देश्य है अर्थात संस्कार पात्रता पैदा करते हैं. सभ्यता, संस्कृति एवं प्रज्ञा के विकास के साथ-साथ भारतीय मनीषियों ने मनुष्य-जीवन को अधिकाधिक क्षमतासम्पन्न, संवेदनशील, भावप्रवण एवं उपयोगी बनाने के लिए ही संस्कारों की अनिवार्यता स्वीकार की है.

भौतिक पदार्थों का ही नहीं अपितु समस्त प्राणि-जगत, पशु-पक्षी भी अपनी-अपनी तरह से संस्कार करते हैं. मनुष्य तो स्वयं चैतन्य है. उसका जन्म अपनी जननी की कोख से प्राकृत रुप में हुआ है, पर उसके प्राकृत जीवन को अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत, संवेदनशील एवं लक्ष्योन्मुख बनाने के लिए संस्कारों की मर्यादा निर्धारित है.

संस्कारों का विस्तृत विवेचन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों के साथ-साथ आयुर्वेद एवं पुराण आदि में भी मिलता है. धर्मशास्त्रों में विशेषतः पारस्कर, सांख्यायन, आश्र्वलायन आदि गृह्यसूत्रों में इनकी संख्या पृथक-पृथक मिलती है. गौतमसूत्र में अडतालिस संस्कारों का उल्लेख है, जबकि सुमन्तु ने पच्चीस संस्करों का उल्लेख किया है. वहीं व्यासस्मृति में सोलह संस्कारों का विवरण है. वे इस प्रकार हैं- (१) गर्भाधारण,(२) पुंसवन, (३)सीमन्तोन्नयन (४)जातकर्म(५)नामकरण (६) निष्क्रमण(७) अन्नप्राशन (८) चूडाकरण (९) कर्णवेध (१०) उपनयन (११) वेदारम्भ (१२) केशान्त (१३) समावर्तन (१४) विवाह (१५) वानप्रस्थ (१६) संन्यास एवं अन्तयेष्टि.

इसमें प्रथम तीन-गर्भाधान, पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन प्रसव से पूर्व के हैं, जो मुख्यतः माता-पिता द्वारा किए जाते हैं. अग्रिम छः-जातकर्म से कर्णवेध तक बाल्यावस्था के हैं, जो परिवार–परिजन के सहयोग से सम्पन्न होते हैं. अग्रिम तीन-उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन विध्याध्ययन से सम्बद्ध है, जो मुख्यतः आचार्य के निर्देशानुसर सम्पन्न होते हैं. विवाह, वानप्रस्थ एवं सन्यास-ये तीन संस्कार तीन आश्रमों के प्रवेशद्वार हैं तथा व्यक्ति स्वयं इनका निष्पादन करता है और अन्तयेष्टि जीवन-यात्रा का अन्तिम संस्कार है, जिसे पुत्र-पौत्र आदि पारिवारिक जन तथा इष्ट-मित्रों के सहयोग से किया जाता है.

उपरोक्त सोलह संस्कारों में हम केवल विवाह-संस्कार को लेकर चर्चा करेंगे. जैसा कि हम जानते ही हैं कि आर्यों ने पवित्र, सरल, स्थिर और सुखमय जीवन-यापन के उद्देश्य से मानव और मानवों के लिए अपने जीवन को संयम, सदाचार, त्याग, तप, सेवा, शांति, एवं धर्म आदि अनेक कल्याणकारी-गुणॊं से परिष्कृत करने एवं अविनय, कदाचार तथा विलासिता आदि दुर्गुणॊं से दूर रहने के लिए "विवाह-संस्कार" को आवश्यकतम माना है. उनके विज्ञान में इस पवित्रतम संस्कार के बिना इन आवश्यक कल्याणकारी-गुणॊं का विकास एवं दुर्गुणॊं का उच्छेद दुःशक्य ही नहीं, अपितु असम्भव है.

विवाह एक सांसारिक अव्यवस्थाओं कॊ दूर करने वाला संस्कार है. इससे पुरुष सुसंस्कृत, सभ्य एवं धर्मात्मा बनता है. पुरुष की अपने शरीर में जितनी ममता होती है, उतनी अन्य वस्तुओं में नहीं. विवाह के द्वारा उसकी ममता अपने शरीर से ऊपर उठकर पत्नी में, फ़िर संतान होने पर, वही ममता पुत्र-कन्या आदि में बंट जाती है. वही प्रेम घर की चारदीवरी से प्राम्भ होकर मुहल्ला, गली, ग्राम, नगर, प्रांत, देश फ़िर क्रमशः समस्त विश्व में व्याप्त हो

जाता है. गृहस्थ के इस महाविद्द्यालय में त्याग-प्रेम आदि का पूर्ण अभ्यास कर जब पति-पत्नी उसी प्रेमभाव-त्यागभाव का प्रयोग परमेश्वर की दिशा की ओर प्रवृत्त कर देते हैं, तब वे परमेश्वर के निकट पहुँच जाते हैं. यही शास्त्रानुसार उनके जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य हुआ करता है.

<u>हिन्दू-विवाह का परम लक्ष्य कामवासना-पूर्ति नहीं है,</u> किंतु यज्ञ में अधिकार-प्राप्ति तथा सात्त्विक प्रेम में प्रवृत्ति और वेदादि शास्त्र में प्रेम उत्पन्न करना है. वेदमन्त्रों से विवाह शरीर और मन पर विशिष्ठ संस्कार उत्पन्न करने वाला होता है. इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तक की प्राप्ति हुआ करती है.

<u>यदि विवाह संस्कार न होता तो पुरुष की न तो पत्नि ही होती, न माँ, न बहन और न उसकी कोई लडकी आदि संतान होती. तब पुरुष का न तो घर होता और न ही कोई विद्ध्यालय होता. विवाहरहित राष्ट्र धर्म, शिक्षा संस्कृति, कला, विज्ञान आदि से सर्वथा शून्य एक पशु-राष्ट्र होता. इसी विवाह-संस्कार ने मनुष्य को व्यवस्थित किया, परिवार दिया, प्रेम दिया, घर बसाने की और विद्या पाने की प्रेरणा दी. विवाह से ही सुवर्णमय संसार बस गया.</u>

<u>हिन्दू विवाह में स्त्री केवल कामपूर्ति का यंत्र नहीं बनतीं, किंतु धर्मपत्नी बनती है,.</u> इसी के द्वारा स्त्री में पातिव्रत्य इतना कूटकर भर दिया जाता है कि वह अपने पति के अतिरिक्त पुरुषों को पिता, भ्राता या पुत्र की दृष्टि से देखती है

इसी हिन्दू-विवाह के परिणामस्वरुप भारतवर्ष का पातिव्रत्यधर्म देश-विदेश में सुप्रसिद्ध है. इसमें पति-पत्नी एक द्वार के दो दरवाजे हैं, एक मुख की दो आँखें हैं, एक रथ के दो चक्र हैं. इसी हिन्दू-विवाह से दम्पत्ती एक-दूसरे से अविश्वस्त नहीं रहते, पक्का गठजोड रहता है. इस विवाह विधि में देवताओं की साक्षी होती है. हिन्दू- संस्कृति में इसी सत्य का साक्षात्कार ही मानव-जीवन का लक्ष्य माना गया है.

तेजी से बदलते परिवेश में हम संस्कारविहीन होते जा रहे है. इस संस्कारहीनता का परिणाम संयुक्त परिवारों के टूटने के रुप में हमारे सामने आ रहा है. पिता द्वारा सम्पत्ति के लिए पुत्र की हत्या, तो कहीं पुत्र द्वारा पिता की हत्या किए जाने की घटनाएं सामने आ रही है. जीवन भर साथ निभाने का संकल्प लेने वाली पत्नी मर्यादाहीनता का शिकार बनकर परपुरुषों से सम्बन्ध बनाने में नहीं हिचकचा रही है. इतना ही नहीं, समाचार-पत्रों में जब पत्नी ने प्रेमी के साथ षडयन्त्र रचकर पति की हत्या करा डाली, जैसे समाचार प्रकाशित होता है हृदय कांप उठता है. तो कहीं छोटी=छॊटी बातों पर हुआ विवाद तलाक का रुप लेने लगा है. तलाक के अधिकांश आवेदनों में दहेज के नाम पर धन मांगने जैसे आरोप लगाए जा रहे हैं. रही सही कसर दूरदर्शन पर ऎसे-ऎसे धारावाहिक प्रसारित किए जा रहे हैं, जिनमे युवक-युवतियों के विवाहपूर्व सम्बन्ध दिखाए जा रहे हैं. इन अवैध सम्बन्धों को "प्रेम" प्रदर्शित कर युवा पीढी को संस्कारहीन बनाया जा रहा है. ठगी-चोरी तथा भ्रष्टाचार के नए-नए तरीके इन धारावाहिकों में प्रदर्शित करने के कारण युवकों को एक प्रकार से अपराधों का प्रशिक्षण प्राप्त हो रहा है. संस्कारहीनता के इससे घृणित परिणाम और क्या हों सकते हैं ?

शिक्षा पद्दति से आये बदलाव के कारण भी अनेक सामाजिक समस्याएँ पैदा हुईं.. मैकाले के मानस-पुत्रों ने भारतीय संस्कृति, वेदों, पुराणों इत्यादि को रुढिवादी, काल्पनिक तथा अवैज्ञानिक कहकर तिरस्कृत किया. उन्होंने यह काम

इतनी चालाकी और चतुराई से किया कि हम उनके झांसे में आ गए और अपने आपको पाश्चात्य संस्कृति में डूबो लिया और अपने हाथों अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित सामाजिक मर्यादाओं का और संस्कारों का ताना-बाना छिन्न-भिन्न करने में पिल पडे. परिणाम -भयंकररुप से सामने खडा होकर अट्टहास कर रहा है.

अब भी देर नहीं हुई है. हमें इन सब बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यक्ता है. और अपनी संस्कार-सम्पन्न गौरवमयी सुदीर्घ परम्परा को समझते हुए तदानुसार उसका आचरण करना होगा. तब जाकर हम पुनः अपने खोये हुए गौरव और आदर्शों को प्रतिष्ठित कर सकेंगे.

....
.

3 **परम्परा और आधुनिकता.**

परम्परा पर चर्चा करने से पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि परम्परा क्या होती है? इसकी स्थापना की जरुरत आखिर क्यों समझी गई? क्या इसका कोई वैज्ञानिक आधार है ? क्या इसके करने और न करने पर कोई अनिष्ट होने की संभावना है? क्या परम्पराएँ कोई दकियानुसी विचारधारा है, या फ़िर इनका कोई ठोस आधार भी है? क्या राष्ट्रीयता को लेकर भी कोई परम्परा विकसित हुई है?. क्या परम्परा का प्रभाव गायन,/नृत्य/चित्रकला/ साहित्य /नाटक/संगीत पर भी देखा जा सकता है? आदि-आदि. एक नहीं,बल्कि अनेक प्रश्न इस दिशा में उठ खड़े होते हैं.

यदि हम इन प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करें तो पाते हैं कि परम्पराऎं जीवन जीने की एक शैली का नाम है. अब यह आदमी के विवेक पर निर्भर करता है कि वह पशुवत जीवन जिए, जिसमें कोई सामाजिक बंधन नहीं है. न ही कोई आदर्श हैं, और न ही कोई नियम कायदे हैं. चुंकि आदमी एक सामाजिक प्राणी है, अतः समाज की एक इकाई होने के नाते, उसके कुछ कर्तव्य बनते हैं, कि समाज में किस तरह शांति का वातावरण बना रहे. बड़े-बुजुर्गों के प्रति उसका कैसा व्यवहार हो. घरों की स्त्रियों के प्रति उसका क्या नजरिया हो. बच्चों के प्रति उसके क्या कर्तव्य होने चाहिए. फ़िर समाज में एक ही जाति के ,एक ही संप्रदाय के लोग नही रहते. उसमे अलग-अलग धर्मों के लोग भी रहते हैं, उनके प्रति उसका क्या दायित्व बनता है,? प्रकृति और पर्यावरण से उसके कैसे संबंध होने चाहिए?, यह भी उसे ध्यान में रखना होता है. इन सब बातों की शिक्षा वेदों-पुराणॊं में अथवा धार्मिक ग्रंथों में पढने को मिलती हैं. इन वेदों और पुराणों के रचियता और कोई नहीं बल्कि हमारे ऋषिगण थे,जिन्होंने सुक्तियों के रुप में ऋचाएं लिखी- श्लोक लिखे, ताकि आदमी इन नियमों का पालन करे और अपने जीवन में उतारे. यहाँ यह बात ध्यान में रखना अति आवश्यक होगा कि वे कथाकथित ऋषि और कोई नहीं, बल्कि समाजशास्त्री ही थे,जिन्होंने एक मर्यादा-रेखा खीचीं, उस पर धर्म का हल्का सा मुल्लमा चढाया और उसे अमल में लाने की सीख दी. उन्होंने जो भी नियम-कायदे बनाए, उन सभी का अपना ठोस आधार है साथ ही वैज्ञानिक आधार भी.

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त अर्थात सूर्योदय से प्रायः डेढ घंटा पूर्व उठकर जाग जाने की बात कही गई है. यह भी कहा गया है कि ऎसा करने से उत्तम स्वास्थ्य, धन विध्या, बल और तेज बढ़ता है. जो सूर्य उगने के समय तक सोया रहता है उसकी आयु घटती है. उन्होंने उसे एक सूत्र में व्याख्यायित करते हुए लिखा-

"कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती--करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम."

अर्थात;--हथेलियों के अग्र भाग में लक्ष्मी निवास करती है, मध्यभाग में सरस्वती और मूल में ब्रह्माजी निवास करते हैं. अतः प्रातः हथेलियों के दर्शन करना आवश्यक है. भगवान देवव्यास ने करोपल्ब्धि को मानव का परम लाभ माना है. इस् विधान का आशय यह है कि प्रातःकाल उठाते ही सर्वप्रथम दृष्टि और कहीं न जाकर अपने करतल में ही देवदर्शन करे, जिससे वृत्तियां भगतचिन्तन की ओर प्रवृत्त हों. भगवान का स्मरण और ध्यान करने से सुबुद्धि बनी रहे. शरीर तथा मन से शुद्ध सात्विक कार्य किया जा सके. जब आदमी सुबह से ही इस बात को अपने जहन में उतार लेता है तो निश्चित जानिए कि वह फ़िर कोई बुरे काम की ओर प्रवत्त नहीं होगा. यदि बुरे काम नहीं करेगा तो उसका फ़ायदा तो उसे मिलेगा ही, साथ में वह समाज के लिए भी अप्रत्यक्षरुप से लाभदायी होगा..

इसी तरह बिस्तर छोडने से पहले और शय्या से नीचे उतरने से पूर्व उसे धरती माता का अभिवादन करना चाहिए और उन पर पैर रखने की विवशता के लिए क्षमा मांगते हुए निम्नलिखित शलोक का पाठ करना चाहिए

" समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले//विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं क्षमस्व में"

आप ऎसा करें अथवा न करें, इससे धरती को कोई फ़र्क नहीं पड़ता. आप चाहें खाट पर रहें अथवा नीचे उतर आएं, धरती पर उतना वजन निश्चित तौर पर रहना ही रहना है, लेकिन इसके पीछे वैज्ञानिक दृष्टिकोण काम कर रहा होता है. धरती के स्पर्ष करने मात्र से आपके भीतर एक चुंबकीय शक्ति उत्पन्न होती है,जिसका अनुभव आप दिन भर महसूस कर सकते है. मात्र इस छोटे से टोटके से क्या आप दिन भर उर्जावान बने रहना नहीं चाहेंगे? फ़िर वैज्ञानिक भी मानते है कि धरती एक विशाल चुंबक है. इस बात से भला आप इनकार कैसे कर पाएंगे.?

इसी प्रकार घर में स्नान करने से पूर्व निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करते हुए लोगों देखा-सुना जा सकता है.

"गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती//नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन संनिधिं कुरु"

इस देश में नदियों को माँ का दर्जा दिया गया है. गंगा-यमुना-सरस्वती, नर्मदा ताप्ती आदि नदियों को देवी का दर्जा दिया गया है और उनकी अनेकानेक महिमा गायी गई है. नहाने से पूर्व आदमी इस भाव से भर उठता है कि वह नदी में उतरकर स्नान कर रहा है. यह भाव-पक्ष है. कहा गया है कि जैसा भाव आप मन में लाएंगे,वैसी ही अनुभूति आपको होने लगेगी. ऎसा किए जाने से मन प्रसन्नता से भर उठता है और वह पूरे दिन अपने आपको तरोताजा पाता है.

एक ही तरह की लोकाभिव्यक्ति या लोक तत्व लंबे समय तक अभिव्यक्त होता रहे तो कालान्तर में परम्परा बन जाता है. और उसकी अभिव्यक्ति लोक परम्परा के अन्तरगत होने लगती है. और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अभिव्यक्ति भी पाती हैं. यथा गीतों में, नृत्यों में, वाध्यों में, कथाओं में, कहावतों में, और लोकोक्तियों में रुप पाकर संचारित होती हैं. साथ ही लोक-व्यवहार, उठने-बैठने, पहनने-ओढ़ने, हँसने-रोने, तथा बातें करने में भी परिलक्षित होती हैं.

इस प्रकार स्पष्ट है कि इन परम्पराओं में भिन्न-भिन्न चीजों पर जोर है,किन्तु उनमें परस्पर मेल मिलाप भी होता है. शास्त्रीय संगीत और नृत्य शास्त्रीय परम्परा के ज्वलन्त उदाहरण है, जो लोक संस्कृति के स्वरुपों **लोक-गीत-** जैसे बिरहा, चैता, कहरवा, पंडवानी**----लोकनाट्य** में नौटंकी विदेशिया,तथा माचा, -लोकनृत्य में छउ बीहू, गर्भा----**लोक चित्रकला** में -मधुबनी, जादोपटिया आदि भिन्न हैं क्योंकि शास्त्रीय संगीत और नृत्य प्रायः कुछ घरानों और राजदरबारों तक सीमित रहे.(दरभंगा, बनारस घराना, जयपुर घराना, लखनऊ घराना,आगरा घराना, ग्वालियर घराना, गया घराना, कर्नाटक संगीत, हिन्दुस्थानी संगीत) वहीं दूसरी ओर लोंकगीत, लोकचित्रकला, लोकनृत्य आदि समूची जनता के लिए खुले है और वह गुरु-शिष्य परम्परा तक सीमित और संकुचित नहीं है, लेकिन यह भी सच है कि दोनो पम्पराओं के मिलने से अर्धशास्त्रीय संस्कृति का विकास हुआ.

जो भी है, यह तो मानना पड़ेगा कि भारत में सांस्कृतिक बहुलता का वजूद है. न केवल धर्मों में और पंथों में अलग-अलग उप-सांस्कृतिक परम्पराएं है, और यह परम्परा इतिहास से भी प्रभावित है, जिसके कारण अद्भुत "सामाजिक संस्कृति" विकसित हुई, जिसमें 'भिन्नता में एकता के साथ-साथ "एकता में भिन्नता" भी है और यही इसकी खूबसूरती एवं निरंतरता की वजह है.

लोक परम्पराएं अपने बुनियादी चरित्र के समानधर्मी होते हुए किसी अंचल विशेष में अपनी विशिष्टता की पहचान अलग लिए भी हो सकती है .उसको समझने के लिए उस अंचल के उद्भव, विकास, और निरंतरता, भौगौलिक परिस्थिति तथा सामाजिक दबाव आदि को ध्यान में रखकर समझा जा सकता है. जन्म संस्कार ,छटी, नामकरण संस्कार, सगाई, विवाह आदि में अपनायी जाने वाली परम्पराएं, मृत्यु के अवसर पर किए जाने वाले संस्कारो में, पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है. यही नहीं, एक ही जाति के लोगों में भी उनकी लोक-परम्पराओं में भिन्नता मिलती है. यद्दपि बुनियादी तौर पर एकरुप होते हुए भी विभिन्न अंचलों की परम्पराएं भी लगभग एक ही तरह की होती है और उनके गतिशीलता का पैमाना भी एक सा ही हुआ करता है.

गतिवान और विकासशील परम्पराएं कब संस्कृति का एक अहम हिस्सा बन जाती है, पता ही नहीं चल पाता. शाब्दिक अर्थों में "संस्कृति" शब्द "संस्कार" का ही रुपान्तरण है. और कालान्तर में संस्कारों का परिमार्जन ही संस्कृति का आकार ग्रहण करता हुआ जीवन भर साथ चलता है, जिसे हम बाद में इन्हीं संस्कृति और संस्कारों को भावी पीढी को सौंप जाते हैं.

लोक व्यवहार के कुशल चितेरे, मानस मर्मज्ञ तुलसीदासजी ने रामचरित मानस में परम्पराओं और संस्कारों की विशद व्याख्या ही नहीं की है,बल्कि उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उतारकर उसे जन-जन तक पहुंचाया भी है-

१/-"प्रातकाल उठि के रघुनाथा* मातु पिता गुरु नावहिं माथा"

२/-"करि दंडवत मुनिहिं सनमानी*निज आसन बैठारेहि आनी

३/-"जननी भवन गए प्रभु*चले नाइ पद सीस"

४/-"लागे पखारन पाय पंकज*प्रेम तन पुलकावली"

"५/- कंबल,बसन विचित्र पटोरे*भांति-भांति बहु मोल न थोरे

६/-गज रथ तुरग दास अरुदासी*धेनु अलंकृत कामदुहा सी"

७/-"सनमानि सकल बरात आदर, दान बिनय बड़ाइ कै

प्रमुदित महा मुनि बृंद बंदे,पूजि प्रेम लड़ाइ कै

८/-"बृंदारका गन सुमन बरिसहिं,राउ जनवासेहि चले

९/-दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ, नगर कौतूहल भले

१०/-तब सखी मंगल गान करत, मुनीस आयसु पाइ कै

११/-दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि, चली कोहबर ल्याइ कै"

"पुनि जेवनार भई बहु भाँती, पठए जनक बोलाइ बराती"

१२/-"आसन उचित सबहिं नृप दीन्हे, बोलि सूपकरी सब लीन्हे

१३/-सादर लगे परन पनवारे. कनक कील मनि पान सँवारे"

१४/-जेवँत देहि मधुर धुनि गारी, लै लै नाम पुरुष अरु नारी'

सुबह उठकर माता-पिता को प्रणाम करना, अपने से बडॆ-बूढे, माता-पिता तथा गुरु को उचित सनमान देना, शादी-विवाह के समय वधु को दहेज में अनेकानेक चीजों का दिया जाना. बरात का आदरपूर्वक सम्मान करना, स्त्रियों का मंगल गान गाना, दुल्हे के लिए लहकोर लेकर आना,और खिलाना, सारे बारातियों को भोजन करने के लिए बुला भेजना, उचित सनमान देते हुए आसन देना, भोजन करने का आग्रह करना, भोजन करते समय स्त्रियां, मधुर ध्वनि से पुरुषों व स्त्रियों के नाम ले लेकर गालियाँ देने का रिवाज आदि का वर्णण गोस्वामीजी ने मानस में किया है

परम्पराओं का सांचा-ढांचा कुछ इस तरह विकसित किया गया था कि वह सकल समाज को भी साथ लेकर चलती है. इस उदाहरण से काफ़ी हद तक उसे समझा जा सकता है. मसलन किसी परिवार में शादी-

विवाह होना है. मंढा बनने और तोरण सजाने के लिए उसे बांस-बल्लियों की आवश्यक्ता होती थी तो वह बसोड़ से संपर्क साधता था. खाम्ब बनाने के, लिए बढ़ई, मिट्टी के पात्र जैसे कलश-और दीप प्रज्जवलित करने के लिए दीया चाहिए तो वह कुंभकार से संपर्क साधता था. शादी की रस्में करवाने के लिए किसी योग्य ब्राहमण की तलाश करना, हर घर तक मांगलिक कार्यों की सूचना अथवा बुलावा भेजने के लिए लिए नाई को इस काम में लगाना, वाद्द-यंत्र बजाने के लिए बसोड़, मंगल गीत गाने और भी व्यवहारिक रीत निभाने के लिए मोहल्ले-पडौस की महिलाओं की आवश्यकता होती थी. रिश्ते-नाते के लोगों के अलावा पूरा समाज इस आयोजन में अपनी भागीदारी का निर्वहन करता नजर आता था.

यह परम्परा आज भी चली आ रही है, लेकिन इस बदले माहौल में काफ़ी कुछ बदल गया है. इस आधुनिकता के दौर के चलते अब लोग देर तक बिस्तर में घुसे रहते हैं. गुरुजनो एवं वयोवृद्ध कितना सम्मान पा रहे हैं, यह किसी से छुपा नहीं है. संबंध तय होने से पहले मांग-लिस्ट थमा दी जाती है. मंगल गान गाने और सुनने की कल्पना अब नहीं की जा सकती. "चिकनी चमेली" जैसे बोल वाले गानों पर युवा-युवतियाँ थिरकते नजर आते हैं. अब कोई आपको मनुहार करते हुए खाना परस कर नहीं खिलाता. उसकी जगह अब "बफ़े" ने ले ली है. बफ़े लेने के अपने अपने नियम कायदे हैं लेकिन लोग भोजन पाने के लिए गिद्द की तरह टूट पडते हैं., बच्चों का जन्मदिन भी अब पाश्चात्य तरीके से मनाया जाता है. उसकी उम्र के अनुसार, उतनी मोमबत्तियां जलाई जाती है और फ़िर " हेप्पी बर्थ डॆ टू यू" कहकर तालियां बजती हैं और फ़िर बच्चा उस मोमबत्ती को फ़ूंककर बुझा देता है, जबकि भारतीय पद्दति में दीप जलाने की शिक्षा दी जाती है.

"दीपोज्योतिः परब्रहम दीपोज्योतिर्जनार्दनः/दीपो हरतु मे पापं सांध्यदीप नमोऽतु ते

शुभं करोतु कल्याण आरोग्यं सुखसम्पदम/शत्रु बुद्धि विनाशाय च दीपज्योर्नामोऽतु ते "

हमारी भारतीय परम्परा में दीप प्रज्जवलित करने के महत्व को प्रतिपादित किया गया है, न कि दीप बुझाने को. यह पाश्चात्य संस्कृति की देन को हम अंगिकार करके गौरवान्वित होने तथा आधुनिक होने का भ्रम पालकर, प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं, यह सीधे-सीधे भारतीयता पर कलंक है.

. बैलगाड़ी का युग काफ़ी पीछे छूट चुका है. अब गति का युग है और गतिवान बने रहने के लिए तेज रफ़्तार से भागने वाली मोटर गाड़ियाँ है, रेल है, राकेट हैं और सुपरसोनिक हवाईजहाज हैं, उसी तरह एक पत्र के इन्तजार में हफ़्तों नहीं बैठा जा सकता. आज हमारे पास उच्च स्तर के साधन मौजूद है. मोबाईल /टेलीविजन और नेट ने, दुनिया को और भी छॊटा बना दिया है. पलक झपकेते ही सब कुछ पाया और देखा जा सकता है. एक साधारण से साधारण आदमी भी इस नयी टेक्नालाजी का भरपूर उपयोग कर रहा है. बावजूद इसके भयंकर गिरावट दर्ज की गई है. आदमी वैसा नहीं रह गया है. इस परिवर्तन की आंधी ने हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को तहस-नहस कर डाला है, उसी का परिणाम है कि आदमी की मनुष्योचित सादगी, निश्छलता, शालीनता, विनम्रता आदि गुणों का तेजी से क्षरण हुआ है. टुच्चागिरी, कमीनगी उसके आचरण के अभिन्न अंग बनते जा रहे है. व्यक्तिगत लाभ-लोभ ने उसे लगभग अंधा बना दिया है. अब वह वही देखना-सुनना और करना पसंद करता है,जिसमें उसका नीजि स्वार्थ छिपा होता है. दया, ममता, करुणा जैसे अर्थवान शब्द उसके लिए कोई माइने नहीं रखते. अनीति से पैसा कमाने की दौड़

में, "परिवार" नामक इकाई में दरारें पड़ने लगी है. सच तो यह है कि अब परिवार बचे ही कहाँ है.?.जब घर नहीं रहा तो परिवार कहां बचा रह सकता है, जिसमें मां-पिता-दादा-दादी आदि रहा करते थे. परिवार में अब बुजुर्गों के लिए जगह शेष नहीं बची है. या तो वे वृद्धाश्रम पहुंचाए जा चुके हैं अथवा भिखारी बन भीख मांगने के लिए मजबूर हो चले हैं. रही सही कसर बाजारवाद ने पूरी कर दी है. जगह-जगह माल खड़े किए जाने लगे हैं. शराबखाने कुकरमुत्ते की तरह ऊग आए है. बार खुल गए हैं ,जहाँ जवान बेटियां थिरकने के लिए मजबूर हैं अथवा मजबूर की जा रही हैं. क्योंकि नाचना उनकी मजबूरी भी हो सकती है और इनकी आड़ में पैसा कमाना बार मलिक की. हिंसा. गैंगरेप के आंकड़ों में निरन्तर बढ़ौतरी हो रही है, इस घिनौनी हरकत में वे लोग हैं जो नजदीक पास के रिश्तेदार हैं पड़ौसी हैं अथवा रिश्ते में सगे होते हैं. इन घटनाओं ने विश्वास की नींव हिलाकर रख दी है.

अब बच्चों को भी घेरा जा रहा है. उनका मासूम बचपन जैसे कैद होकर रह गया है. पैदा होने के साथ ही उसे अंग्रेजी में तामिल दी जाने लगी है. परिणाम चौंकाने वाले हैं कि वह न तो अच्छी अंग्रेजी का ज्ञाता बन पाता है और न ही हिन्दी का. अधकचरे ज्ञान ने उसकी सहजता-सरलता को ग्रहण लगादिया है. अल्पवय में अब उनके हाथ में रिमोट पकडा दिया जाता है,"वे चैनल बदलकर अपनी पसंद का कार्यक्रम देख सकते हैं, भले ही उसमें वर्जित दृष्य दिखाए जा रहे हों. अब वे कंप्युटर पर भी हाथ आजमाने लगे हैं और पोर्न-साइट का आनन्द उठाने लगे हैं. आधुनिकता के नाम पर माता-पिता उन्हें वे चीजे मुहैया करवा रहे हैं,जिसमें बच्चों का समय पास हो सके क्योंकि पैसे कमाने के चक्कर में उनके पास अपने बच्चों के बीच बैठने का वक्त ही नहीं है. एक समय वह भी था जब भारतीय परम्परा में बच्चॊ कॊ विद्द्याभ्यास के लिए गुरुकुलों में भेजकर संस्कारित किया जाता था. अब वे दिन रहे नहीं. आज गली-गली में अंग्रेजी सीखाने के स्कुल कुकरमुत्ते की तरह ऊग आए हैं जहाँ बच्चे "अ" अनार का, म" मछली का, न बोलकर ए.बी.सी.डी का रट्टा लगाता है. कौवे को "क्राउ",गाय को "काउ",भैंस को "बफ़ेलो"के नाम से जानते हैं. इस तरह जानवरों के नाम से वंचित होते जा रहे हैं. इसी तरह "अंकल" शब्द चल निकला है. आप उम्र में छॊटॆ हैं अथवा बुजुर्ग सभी "अंकल" की श्रेणी में आते है. इस तरह "अंटी" शब्द भी प्रचलन में आ गया है. चाचा, फ़ूफ़ा, चाची, भाभी जैसे संबंधकारक शब्द बेमानी हो गए हैं. हिन्दी की गिनती तक वे नहीं जानते.

स्वतंत्रता संग्राम में हिन्दी को वरीयता दी गई और उसे आधार बनाकर लंबी लड़ाइयां लड़ी गई थी ताकि अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों से छुटकारा पाया जा सक्रे और देश परतंत्रता की बेड़ी काटकर आजाद हो सके. देश पर अपनी जान कुर्बान कर देने वाले उन तमाम देशभक्तों ने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि देश आजाद होकर एक दुष्चक्र में फ़ंस जाएगा. हो वही रहा है, जो नहीं होना चाहिए था. गोरे अंग्रेज चले गए और उसकी जगह काले अंग्रेज सत्तानशीन हो गए. गोरे तो फ़िर भी अपनी सरकार के प्रति ईमानदार थे, कर्तव्यनिष्ठ थे, नियम-कानून-कायदे के पक्के हिमायती थे, तथा अपने देश और देशवासियों के लिए उनके मन में समर्पण का भाव था. यदि वैसा की वैसा ही चलने देना था तो फ़िर इतना लंबा संघर्ष चलाने की जरुरत ही क्या थी? सारा राजकाज आज भी विदेशी भाषा में चल रहा है. अंग्रेज से नफ़रत और अंग्रेजी से प्यार, यह नीति समझ से परे है. उसी तथाकथित नीतियों पर चलते हुए अब गाँव-कस्बे तक अंग्रेजी की पाठशालाएं खोल दी गई है. सत्ताधारियों की शायद यह सोच है कि बच्चे यदि अंग्रेजी भाषा के जानकार हो जाएंगे तो उनकी गिनती सभ्य होने की निशानी मानी जाएगी. सभी जानते है कि अंग्रेजी भाषा में वे परम्पराएं नाम मात्र को भी नहीं है जो भारतीय परम्पराओं में मौजूद है. शायद वे

भूल कर रहे हैं और यह नहीं जानते कि बच्चे एक ऎसी पीढ़ी है जो हमारा-आपका-सबका वर्तमान तो है ही, साथ ही हमारा-आपका भविष्य भी है. एक कोंपल, जो नाजुक है,सुन्दर है-रक्षणीय है तथा शारीरिक रुप से लेड़ने में असमर्थ है, इसका बर्बाद होना अथवा टूटना अर्थात पूरे ढांचे का बर्बाद होना है.

.हर काम अब ठीक उलटॆ हो रहे है. शहरी संस्कृति ने तो और भी नए रिकार्ड कायम किए हैं. पड़ौस में कौन रह रहा है,? किस को हमारी जरुरत हो सकती है,? हम किसी के काम आ सकते हैं,? जैसा भाव भी अब दिखलाई नहीं पड़ते. सारी परम्पराओं और मान्यताओं को धता बताकर हम किस ओर बढ़ रहे हैं? यह सोचनीय प्रश्न है. क्या हम अपनी विरासतों को दफ़न करते हुए उस पर आधुनिकता का महल खड़ा करने का प्रयास कर रहे हैं, जिसे आज नहीं तो कल भरभराकार गिर जाना है? क्या हमें उस तरह की आधुनिकता चाहिए अथवा विकास चाहिए जो पेड़ों की बलि लेकर खड़ी की जा रही हो, नदियों के बहाव को मोड़कर अथवा पहाड़ों को खोखला कर बिजली उत्पादन का रिकार्ड स्थापित किए जाने का उपक्रम किया जा रहा हो. आखिर हम चाहते क्या हैं,? शायद ठीक से हमको पता नहीं है. उसके भीषण परिणाम "उत्तराखण्ड की भयावह त्रासदी" के रुप में हमारे सामने खडा अट्टहास कर रहा हैं. श्रद्धा-विश्वास और आस्था के केन्द्रों की उपेक्षा का परिणाम हमने, सबने देखा और भी न जाने कितने ही परिणामों को भुगतने के लिए हमें तैयार रहना होगा.

आधुनिकता अथवा उत्तरआधुनिकता की बात हो, इस दौर में खड़े होने के लिए हमारे अपने पास क्या है.? क्या है हमारे पास जिस पर हम गर्व सके ? न तो आज देश के पास उसकी अपनी भाषा है, और न ही उसका संविधान. देश भी दो नामों से जाना जाता है -एक भारत और दूसरा इंडिया. भारत में गरीब-शोषित-पीडित-उपेक्षित जन रहते हैं, जिनकी भाषा हिन्दी अथवा स्थानीय बोली है. जबकि इंडिया में धनाड्य लोग- ईलीट लोग, रहते हैं जिनकी भाषा अंग्रेजी है, जिनके पास घर नहीं, आलीशान कोठीयां होती है. वह ए.सी कार में सफ़र करता है. ऎ.सी में सोता है और बंद बोतलों का पानी पीता है..संयोग से सत्ता की चाभी इन्हीं इलीट वर्ग के पास है वे ही सत्ता का उपभोग कर पाते हैं अथवा कर रहे हैं जिनके अन्दर देश नाम की कोई चीज नहीं है. उनकी एक वक्त की थाली का मूल्य हजारों में होता है,जबकि एक गरीब मात्र बीस रुपयों में गुजारा करता है. हमारी सारी बड़ी-बड़ी योजनाएं शहरो से होकर गुजरती हैं,जबकि गांव आज भी उपेक्षित हैं. गांधी का माडल, नेहरुजी के माडल के आगे फ़ेल हो गया. वे जिस तर्ज पर भारत की बुनियाद रखना चाहते थे, नेहरु उनसे बिल्कुल भी सहमत नहीं थे. भाषा के नाम पर क्या हुआ? यह सभी जानते हैं और आज तक हिन्दी इस देश की भाषा होने का गौरव नहीं पा सकी. फ़िर एक भयानक षडयंत्र रचा गया. भाषा के नाम पर अलग-अलग राज्य खड़े कर दिए गए. हालात किसी से छिपे नहीं है. आपस में मल्लयुद्ध हो रहा है. चाहे वह भाषा के स्तर पर लड़ा जा रहा हो अथवा पानी के बंटवारे को लेकर लड़ा जा रहा हो. सारे कल-कारखाने शहरों में स्थापित किए गए. शहरों को फ़ैलाव के लिए जगह चाहिए थी, सो गांव की गांव खाली करवा लिए गए और उनकी जगह आलीशान इमारतों ने ले लीं. गांव के लोग बेरोजगार हो गए और वे पलायन कर शहरों की ओर भागने को मजबूर हो गए. गांव में बच गए लंगड़े-लूले-अपाहिज, बूढ़े लोग. गांव जैसे गांव नहीं रह पाए. विकट स्थिति बन पडी है कि आज शहर बसने लायक नहीं बचे और गांव रहने लायक.

यह सब देख कर अपार पीड़ा होती है कि आजादी से पूर्व हमारे महापुरुषों ने भारत को लेकर कितने हसीन सपने देखे थे, आज उससे ठीक उलट हो रहा है. अब तो भारतीयता की पहचान भी खतरे में पडती जा रही है.

.इस बदलाव को देखते हुए यह बात कही जा सकती है कि संस्कृति को मनुष्य ही बनाता और बिगाडता भी है. और हम शायद यह भूलते जा रहे हैं कि संस्कृति की वजह से ही मनुष्यता पैदा होती है. अब मनुष्य नहीं, आदमियों की भीड़ ज्यादा बढ़ रही है. संकट के इस भयावह दौर में अब इंतजार है उस चमत्कार का कि भविष्य में कोई ऎसा महापुरुष पैदा होगा, जो हमारे भारतीय संस्कृति और परम्पराओं की पुनर्स्थापना करेगा. और देश को वह गौरव दिलवाएगा,जिसका की वह हकदार है.

4 डाकघर _ इतिहास के झरोखे से

आत्यानुधिक डाकघर भवन में जहां मरकरी लाइट की चकाचौंध आंखों को चुंधिया रही हो, जहाँ कम्युटर अपना कार्य पूरी दक्षता के साथ संपन्न कर रहें हों, जहां से सेटेलाइट मनीआर्डर भेजे जा रहे हों, जहां मशीनें चिट्ठियों की सार्टिंग बडी बारिकी से कर रही हों, ऐसे सुसज्जित भवन में,आज की सदी में पैदा हुए किसी नौजवान को ले जा कर खडा कर दिया जाए तो वह कौतुहल से उन्हें नहीं देखेगा,क्योकि वह आज वे सारी चिजों को अपने लैप्टाप में अथवा कम्प्युटर पर स्वयं देख-सुन रहा है,मोबाइल सेट उसकी अपनी जेब में है, वह बटन दबाते ही अपने किसी मित्र से रोज बात करता रहता है,उसे तनिक भी आश्चर्य नहीं होगा.और न ही वह यह जानना चाहेगा कि यह किस प्रकार काम करते है और इसके पीछे उसका अपना क्या इतिहास रहा होगा.

यदि कोई उससे कहे कि क्या वह यह जानता है कि आज से सैकडों वर्ष पूर्व ये सारी व्यवस्था नहीं थी,तब आदमी अपना काम कैसे चलाता होगा? कैसे अपना संदेशा अपने सुदूर बैठे मित्र अथवा परिवार के सदस्यों को भेजते रहा होगा? तो निश्चित तौर पर वह यह जानना चाहेगा,कि अभावों के बीच भी उसके पूर्वज कैसे काम चलाते रहे होंगे. सबसे बडी कमी आज हमारे बीच में यही है कि हम न तो उसे अपने गौरवशाली इतिहास की जानकारी नहीं देते.जबकि हमारा यह उत्तरदायित्व बनता है कि हम अपनी विरासत, अपनी भावी पीढी को देते चले. जब तक हमे उसके बारे में कुछ भी पता नहीं होगा,हम आखिर गौरव किस बात पर करेगें?

डाकघर का अपना गौरवशाली इतिहास रहा है. वह न सिर्फ़ हमें चमत्कृत करता है, बल्कि एक ऐसे भावालोक में भी ले जाता है, कि कठिन परिस्थितियों में हमारे पूर्वजों ने उसे इस स्थिति तक लाने में कितनी मेहनत की थी.

इतिहास को टटोलें तो हमें ज्ञात होता है कि राजघरानॊं में कभी कबूतर पाले जाते थे और उन्हें बाकायदा प्रशिक्षण भी दिया जाता था और सामने वाले की पहचान भी बतलानी होती थी कि पत्र प्राप्तकर्ता कैसा है ? इसके लिए उसे उसका छाया-चित्र दिखलाया जाता था और उसके पैरों में संदेशा/पत्र आदि बांध दिया जाता था और वह

वहां जाकर उसी व्यक्ति को पत्र देता था,जिसकी पहचान उससे करवा दी गई थी. राजकुमार अकसर अपने प्रेम-संदेशे अपनी प्रेयसी को इसी के माध्यम से भिजवाते थे.

यह एक श्रमसाध्य कार्य था और इसमे कई बात धोका भी हो जाता था. उस समय भारतवर्ष में कै छोटे-बडे राज्य होते थे. राजा को कहीं पत्र भेजना होता था तो वह पत्र लिख कर उस पर राजमोहर चस्पा कर उसे घुडसवार के माध्यम से पहुंचता था. कई राजा- महाराजाओं ने एक निश्चित दूरी तय कर रखी थी. घुडसवार उस दूरी तक जाता और वहां तैनात दूसरे घुडसवार को वह पत्र सौंप देता था. इस तरह डाक लंबी दूरी तक पहुंचायी जाती थी. यह व्यवस्था केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित थी. आमजन इस व्यवस्था को जुटा नहीं पाता था.

डाक व्यावस्था को सुचारु रुप से चलाने के लिए प्रयास चलते रहे. फ़िर डाक व्यवस्था हुई जो आमजन के लिए सुलभ थी. विश्व को अचंभित कर देने वाली मोर्स प्रणाली का आविष्कार हो चुका था. टेलीग्राफ़ लाइनें बिछाई जाने लगी थी. इस तरह संचार व्यवस्था में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया और आवश्यकतानुसार चीजें जुडती चली गयीं.

* सन 1825 में पहला टिकिट सिंध से कराची से जारी किया गया.
* सन 1830 में इंगलैण्ड और भारत के मध्य डाक संबंध स्थापित हुए.
* सन 1851में कलकत्ता एवं डायम्ण्ड हार्वर के बीच पहला सरकारी तार लाइन की व्यवस्था हुई.
* सन 1854 में पूरे भारत के लिए डाक टिकिट जारी की गई.
* सन 1865 की 27 तारीख को भारत और इंग्लैण्ड के बीच तार व्यवस्था स्थापित हुई.
* सन 1877 में व्ही.पी.प्रणाली जारी
* सन 1880 में मनीआर्डर व्यवस्था. जारी
* सन 1885 में रकम जमा करने" बचत बविंक" का शुभारंभ.

* 1907 में १५ नवम्बर को पहला इंटर्नेशनल रिप्लाई कूपन जारी किया गया.

* सन 1911 में इलाहाबाद से नैनी जंक्शन तक पत्र लेकर पहले विमान ने उडान भरी. यह वह समय था जब लोगों ने आकाश में उडता हुआ देखा था . पास से देखने एवं उडान भरते हुए नजदीक से देख पाने का सौभाग्य केवल उसी दिन मिला था. अतः नजदीक से देखने वालों की भीड का अंदाज आप स्वयं लगा सकते हैं बेहिसाब भीड के बावजूद वहां गजब की शांति थी क्योंकि लोग आश्चर्य में डूबे हुए थे. एक डच विमान जिसका नाम बंबर-सोभंर था और जिसके चालक का नाम हेनरी पिके,जो फ़ांसीसी था, अपना विमान फ़ांस से लेकर आया था. इसके बाद अलग-अलग देशो में हवाई डाक सेवा प्रारंभ की. प्रथम उडान इटली के ब्रिंडस्ट नामक स्थान से अलबानिया के बेलोना नामक स्थान के मध्य हुई परन्तु नागरिक हवाई डाकसेवा को आरम्भ करने का गौरव आस्ट्रिया को प्राप्त हुआ. इस सेवा के अंतर्गत यह सुविधा सर्व प्रथम आस्ट्रिया के वियेना नगर तथा रूस के कोव नगर के मध्य प्रचलन में आयी.

* वायुयान से डाक लाने और ले जाने से पूर्व गैस से भरे गुब्बारों को प्रयोग में लाया गया. इस व्यवस्था अंजाम में लाने वाले व्यक्ति का नाम जान वाईस था,जिसने 35मील की उडान भरी थी. जानवाईस के सम्मान में

अमरीका ने एक विशेष डाक सेवा प्रारंभ की एवं उस गुब्बारे का सार्वजनिक प्रदर्शन भी किया.

* 1917 मे सर्वप्रथम अधिकृत हवाई डाक टिकिट का प्रचलन आरम्भ हुआ.6 नवम्बर को पहला समाचार पत्र"केप-टाउन"जो केप्टाउन में छापा गया था. इसे पोर्ट- एलिजाबेथ: नामक हवाई जहाज से भेजा गया था.

* 1918 में यू.एस.ऎ ने हवाई टिकिट का प्रचलन आरम्भ हुआ. तथा टिकिटों पर हवाई जहाज के चित्र भी प्रकाशित किए गए.

* 1928 में "न्यूयार्क हेराल्ड ने अपने नियमित हवाई डाक संस्करण का प्राकाशन प्रारंभ किया था.

*1929 को भारत ने कामनवेल्थ हवाई डाक टिकिट जरी किए गए.

* 1930 को एक्सप्रेस डिलिवरी सर्विस जारी की गयी.

* 1932 में अमेरीका ने हवाई डाक लिफ़ाफ़े का प्रचलन शुरु किया.गया.

* 1946 में विश्व का पहला हवाई तार भेजा गया.

" डाक " क्रे इतिहास में एक नही वरन अनेक ऐसी रोचक जानकारियां हैं कि उन्हें अगर विस्तार दिया गया तो एक किताब ही लिखी जा सकती है. जिज्ञासु व्यक्ति को चाहिए कि वह इन दुर्लभ ऐतिहासिक जानकारी का संकलन करे एवं अन्य लोगों को भी प्रेरित करे,

युवा कवि-कहानीकार,लेखक, संपादक एवं कुशल प्रशासक डाक विभाग में कार्यरत आई.पी.एस. अधिकारी श्रीयुत कृषणकुमार यादव ने डाक विभाग के एक सौ पचास साल के गौरवशाली इतिहास को अपनी किताब" इन्डिया पोस्ट. 150 ग्लोरियस इअरस" में कडे परिश्रम से तैयार किया है, जो न सिर्फ़ रोचक है,बल्कि ज्ञानवर्धक भी है. आज भी कई ऐसे लोग हैं जो डाक-टिकिटों का तथा समय-समय पर प्रकाशित होने वाले" फ़ोल्डरों का तथा फ़र्स्ट डे कवर्स" का कलेक्शन करते हैं,उन्हें इस किताब को खरीदकर अपने संग्रह में रखते हुए उसे और भी बहुमूल्य बना सकते हैं.

3 मार्च 1847 कॊ अमेरिका मे एलेक्जंडर ग्राहम बेल नाम के बालक ने जन्म लिया,.जिसके पिता का नाम एलेक्जॆंडर मेल विले बेल और माता का नाम इलिजा ग्रेस था.. एलेक्जंडर बचपन से मेधावी, और विलक्षण प्रतिभा के धनी थे. इनकी मां बहरी थी. संयोग से जब इनकी शादी माबेल विले बेल से हुई तो वह भी बहरी ही थी. अपने मन की बात जब इनसे कहना होता तो उन्हें काफ़ी दिक्कतों का सामना करना पडता था. शायद यह वही कारण था कि वे आगे चलकर टेलीफ़ोन का आविष्कार कर पाए.

एडिनबर्ग युनिवर्सिटी और युनिवर्सिटी कालेज लंदन से अपनी पढाई पूरी कर वे बोस्टन युनिवर्सिटी मे आविष्कारक, वैज्ञानिक,इंजिनियर,प्रोफ़ेसर रहे. वे बधिरों के शिक्षक थे. बचपन से ही इन्हें ध्वनि विज्ञान में गहन रुचि थी. 23 साल की उम्र मे उन्होंने पहला प्यानो बनाया था. वे स्पीच टेक्नोलाजी विषय के शिक्षक रहे थे, अतः ऐसा यंत्र बनाने में सफ़ल हुए जो न केवल म्यूजिक्ल नोट्स भेजने में सक्षम था बल्कि आर्टिकुलेट स्पीच भी दे

सकता था. यह टेलीफ़ोन का सबसे पुराना माड्ल था.

एलेक्जंडर ग्राहम बेल न सिर्फ़ टेलीफ़ोन के आविष्कारक थे बल्कि मेटल डिटेक्टर की खोज का श्रेय भी उन्हें ही जाता है. बाद में वे डायबिटिक हो गए थे. २ अगस्त १९२२ के दिन उनका निधन हो गया.

Desk Type 1878

Wall Type 1880

Mageto Telephone 1895

Pillar Type 1905

Early Padestal Telephone 1914

Rotary Dial 1988

CCB Telephone 1945

GLE Telephone 1966
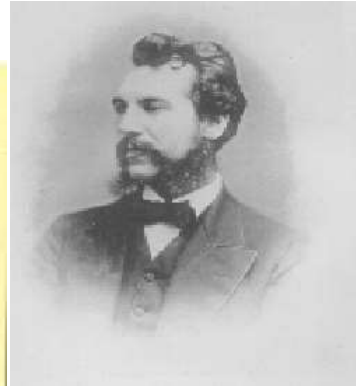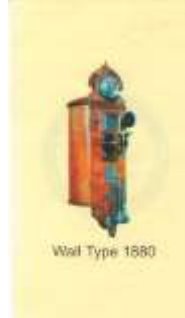
टेलीफ़ोन के माडल जो समय और आवश्यकता के अनुसार बदलते रहे..(1से 8) -------------------------------- ऊपर एलेक्झंडर ग्राहम बेल का चित्र.

सेमुअल एफ़.बी. मोर्स (27 अप्रैल 1791-2अप्रैल 1872

टेलीग्राफ़ सिस्टम के आविष्कारक
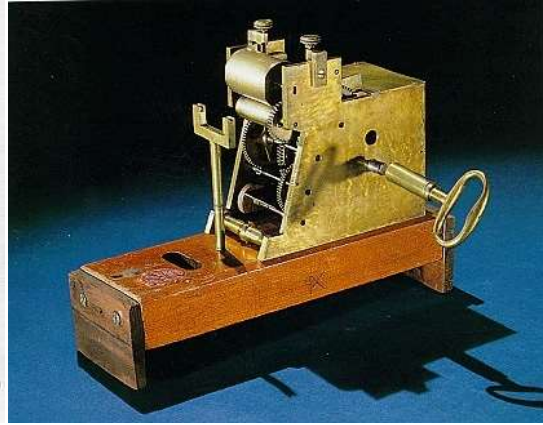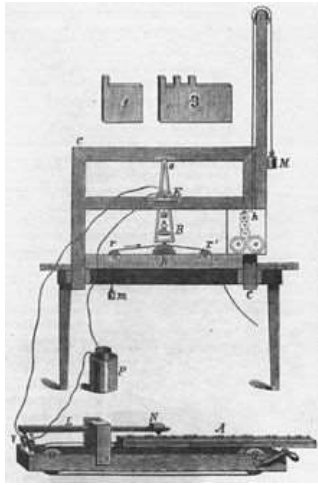
तार भेजने वाला यंत्र जो मोर्स के नाम से जाना गया.

सेमुअल फ़िनाले ब्रीज मोर्स का जन्म अमेरिका के चार्ल्स टाउन(मेसाचुसेट्स) को २ अप्रैल १७९१ में हुआ था, जिन्होने एकल-तार टेलीग्राफ़ी प्रणाली एवं मोर्स कोड का निर्माण किया था. वे भूगोल- वेत्ता और पादरी जेविडिया मोर्स की पहली संतान थे.

....

दादा कैलाशचन्द्र पंत

(एक लाइट हाउस)

की तरह हैं

"हिन्दी की रक्षा और सम्मान के लिए, हमें अपनी संस्कृति पर हावी होते इण्डिया और भारत के अन्तर से लडना होगा. बिना लडें हम हिन्दी के विकास की कल्पना नहीं कर सकते."

"भारत के पास वह आन्तरिक शक्ति है कि दुनिया की कोई भी सभ्यता या संस्कृति को नुकसान नहीं पहुँचा सकती"

"हिन्दी को जन-जन की भाषा बनाने के लिए हम यहाँ से शुरुआत करें कि हम अपनी गाडियों- अपने घरों के नामपट्ट हिन्दी में लिखवाएँ और अपने हस्ताक्षर हिन्दी में करें"

शहर छिन्दवाडा में 1903 में निर्मित ऎतिहासिक भवन" टाउन हाल" के विशाल सभाग्रह में म.प्र.राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जिला इकाई छिन्दवाडा के सदस्यों, जनसमुदाय,, तथा साहित्यकारों को "भूमण्डलीकरण व राष्ट्रभाषा की चुनौतियाँ" विषय पर लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार, लेखक, संपादक,पत्रकार,समाजसेवी, चिन्तक,मनीषी तथा प्रखर वक्ता माननीय श्री कैलाशचन्द्र पंत(मंत्री-संचालक) ने सम्बोधित करते हुए उक्त विचार व्यक्त किए. 28 अक्टूबर 2007 छिन्दवाडा जिले का वह ऎतिहासिक दिन था, जब "दादा" हिन्दी की मशाल थामे भोपाल से चलकर यहाँ आए थे.

मंच पर वयोवृद्ध गीतकार पंडित रामकुमार शर्मा, डा.वरदमूर्ति मिश्र(एस.डी.एम), डा. कौशलकिशोर श्रीवास्तव, डा लक्ष्मीचंद तथा मैं स्वयं उपस्थित था. समिति की ओर से उन्हें शाल ओढाकर,श्रीफ़ल भेंट देकर,सारस्वत सम्मान देकर नागरिक अभिनन्दन किया गय़ा. दादा ने कवि मित्र ओमाप्रकाश"नयन" के काव्य संग्रह " सच मानो शकुन्तला" का विमोचन भी किया. दादा को सुनने के लिए जन सैलाब उमड पडा था. भीतर और बाहर श्रोताओं की अच्छी-खासी भीड उमड आई थी. बावजूद इसके चारों ओर शान्ति व्याप्त थी. आज भी मुझे उन क्षणॊं की याद आती है तो मैं आत्मविभोर हो जाता हूँ.

मेरा अपना मानना है कि ऎसा सुयोग अनायास ही प्राप्त नहीं होता. निश्चित ही मैंने पुण्य अर्जित किए होंगे कि आपका आशीर्वाद तथा सान्निध्य मुझे प्राप्त हुआ. उस दिन से लेकर आज तक मैं हिन्दी के उन्नयन और संवर्धन के लिए पूरी ईमानदारी, पूरी निष्ठा तथा लगन से इस दायित्व को निभाता आ रहा हूँ. यह कोई गर्वोक्ति नहीं है और न ही कोई दावा ही कर रहा हूँ .इस सेतुबंध अभियान में मेरी भूमिका वीर हनुमान, नल-नील की सी है. बस मेरी भूमिका उस छोटी सी गिलहरी के तरह है जो अपने शरीर को पानी में भिंगोती, रेत पर आकर लेटती और शरीर पर चिपके रेत के कणॊं को लाकर समुद्र में छोड देती है.

"दादा" से मेरा पहला परिचय और जुडाव किस तरह हुआ,यह एक दिलचस्प वाक्या है. मेरे एक हितैषी मित्र श्री प्रमोद उपाध्याय ने मुझसे हिन्दी भवन में आयोजित चौदहवीं पावस व्याख्यान माला (10-12.08.2007) में चलने का आग्रह किया. पावस व्याख्यान माला महीयसी महादेवी, हजारीप्रसाद द्विवदी जी तथा हरिवंशराय बच्चन जी के जन्म शताब्दी पर केन्द्रीत थी..

मित्र ने मेरा परिचय दादा से करवाया. परिचय प्राप्त होने पर उन्होंने बडी ही संजीदगी से मेरी ओर मुखातिब होकर कहा_"मुझे आपकी कुछ रचनाएं पढने को मिली थी. अच्छा लिखते हैं आप." बात को मोड देते हुए उन्होंने मुझसे पूछा-" अभी आप किस संस्था से जुडे हैं? मैंने कहा-"फ़िलहाल मैंने कोई संस्था की सदस्यता गृहण नहीं की है. जवाब सुनकर उन्होंने कहा-"राष्ट्र भाषा प्रचार समिति का मुख्य उद्देश्य, हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना है और यह एक अंतरराष्ट्रीय संस्था है. यदि आप हिन्दी की सेवा करना चाहते हैं तो छिन्दवाडा में एक इकाई का गठन करें लोगों को जोडें और जन-जन तक संस्था के मंतव्य को पहुँचाए."

बातों को गंभीरता से सुनते हुए मेरी नजरे उनके चेहरे पर केन्द्रीत थी. दिपदिपाता ओजमय चेहरा, होठों पर तैरती मंद-मंद मुस्कान, आत्मविश्वास से लबरेज उनका हृदय आदि देखकर मैं भीतर ही भीतर गदगद हो उठा था. अनुठे व्यक्तित्व के धनी, हिन्दी का एक कर्मठ सिपाही, हिन्दी भवन का संचालक, वर्धा समिति का मंत्री, विख्यात साहित्यकार, सामाजसेवी, एक आला दर्जे का संपादक, पत्रकार मुझसे रुबरु हो रहा था और मुझसे संस्था से जुडने का आग्रह कर रहा था. मैंने सारी बाते सुन चुकने के बात वादा किया कि मैं शीघ्र ही छिन्दवाडा में एक इकाई का गठन करुंगा और हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए अपने आपको समर्पित कर दूंगा.मेहनत रंग लाई और इस तरह राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की इकाई का गठन हुआ.

समिति ने समय-समय पर कई महत्वपूर्ण कार्यक्रम किए. मराठी बहुल क्षेत्र सौंसर में समिति कि शाखा खोली गई. इसके बाद तामिया,मुलताई,बैतूल आदि स्थानों पर हिन्दी सेवियों की तलाश करते हुए शाखाओं का प्रसार किया गया.

दादा पंत का जीवन वृत्त

26 अपैल 193 को महू(इन्दौर) म.प्र. में जन्मे श्री पंतजी ने एम.ए.साहित्याचार्य तथा ,साहित्यरत्न में दीक्षित होकर यूनियन थियोलाजिकल सेमीनरी इन्दौर(1957-59) मे व्याख्याता, पंचायतराज प्रशिक्षण केन्द्र भोपाल(1963-71) के प्राचार्य, विद्या भवन(एस,ई.टी.सी.) उदयपुर में प्रकाशन प्रमुख, दैनिक इन्दौर समाचार(1972-77) के संवाददाता, सोशलिस्ट कांग्रेसमैन,दिल्ली(61-62), दैनिक नवभारत,भोपाल(62),, दैनिक नवप्रभात,भोपाल(62-63),में सह-संपादक, मासिक "शिक्षा प्रदीप,भोपाल(63-64) साप्ताहिक जनधर्म,भोपाल(77-98), साप्ताहिक "दूरगामी आब्जर्वर,इन्दौर(2000-01) तथा हिन्दी भवन से प्रकाशित होने वाली द्वैमासिक पत्रिका अक्षरा,भोपाल (2003 से अनवरत) संपादक का प्रभार सम्हाले हुए हैं. अपनी बेबाक संपादकीय के लिए आपकी विशिष्ठ पहचान बन चुकी है.

आपके व्यक्तित्व और कृतित्व का समग्र मूल्याकंन करते हुए, देश के 18 विशिष्ठ मंचों द्वारा दादा का सम्मान किया जा चुका है. इसके अलावा .भारत सरकार के प्रतिनिधि के रुप में आप फ़िलीपीन्स(76) नेपाल(87) इस्राइल(89) इंडोनेशिया(92), पांचवे विश्व हिन्दी सम्मेलन में म.प्र.शासन के प्रतिनिधि के रुप में ट्रिनिडाआड एवं टुबेगो(वेस्टैंडिज), लंदन के छटे विश्वहिन्दी सम्मेलन में म.प्र.शासन की ओर से भागीदारी, अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन ह्यूस्टन(यू.एस.ए) में भागीदारी, सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन सूरिनाम मे प्रतिभागिता तथा मिस्र, जोर्डन,स्विट्जलैंड, जर्मनी,फ़्रांस,इटली,नीदरलैंड,सिंगापुर, नेपाल, और थाईलैंड की पर्यटन यात्राएं की है.

इतना व्यस्ततम जीवन जीते हुए दादा अब भी अनेको साहित्यिक मंचों और अन्य सेवा संस्थानों में अपनी भागीदारी का निर्वहन कर रहे हैं.

(प्रकाशन)-कौन किसका आदमी, धुँध के आर-पार, शब्द का विचार-पक्ष, शैलेश मटियानी:सृजन यात्रा: संपादन, सत्ता,साहित्य और समाज,सांस्कृतिक धारा के हिन्दी रचनाकर आदि संग्रह और, साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर करीब 800 आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं

हिन्दी भवन के निर्माण में आपका अथक योगदान रहा है. इसके अलावा समिति का कार्यालय, वाचनालय, निवास के लिए दो विशाल कक्षों का निर्माण भी दादा ने अपनी देखरेख में पूरे करवाए. वे यहीं नहीं रुके. इसकेश बाद साहित्यकार निवास,जिसमें लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकारों के नाम बारह सुसज्जित कमरे,जिसमे सारी सुविधाएं उप्लब्ध है, का निर्माण कार्य करवाया. हिन्दी भवन के साथ ही यह निर्माण हिन्दी साहित्य जगत के लिए अभूतपूर्व योगदान है.

हिन्दी भवन में पावस व्याख्यानमाला, बसंत व्याख्यानमाला एवं शरद व्याख्यानमाला के अन्तर्गत दिए गए व्याख्यानों के दस्तावेजीकरण की नयी पहल की और उनका "संवाद और हस्तक्षेप" एवं मंथन के नाम से प्रकाशन प्रारम्भ किया. यह साहित्यिक संस्थाओं के लिए सर्वथा नयी परम्परा थी. वे स्वयं प्रकाशक बने एवं युवा सहयोगियों के भी सम्पादन का अवसर दिया.

सन 2011 में अपने जीवन के पचहत्तर वर्ष पूरे कर चुके "दादा श्री कैलाशचन्द्र पंत " का अमृत महोत्सव मनाए जाने के लिए हिन्दी भवन समिति तथा नगर और नगर के बाहर की संस्थाओं ने निर्णय लिया तथा उनकी स्मृतियों को अक्षुण्य बनाने के लिए एक स्मारिका के प्रकाशन का भी निर्णय लिया गया. माधवराव सप्रे स्मृति समाचार संग्रहालय एवं शोध संस्थान की ओर से डा.मंगला अनुजा जी ने प्रकाशन, का उत्तरदायित्व सभाला तथा डा.सुनीता खत्री, डा.सुषमा तिवारी ,डा, प्रतिभा गुर्जर, तथा डा. ललिता त्रिपाठीजी ने संपादक की भुमिका का निर्वह किया. आप सबने मिलकर इसके प्रकाशन-और साज-सजा के लिए कडी मेहनत की और इस तरह 276 पृष्ठों का महान ग्रंथ "दादा की स्मृति में प्रकाशित होकर आया.

रवीन्द्र भवन के मुक्ताकाश मंच पर, आयोजित इस भव्य समारोह में, प्रदेश के मुख्य मंत्री श्रॊ.शिवराजजी चौहान , गृहमंत्री, संस्कृति मंत्री, खेल मंत्री,, जगतगुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरुपानान्द सरस्वती के निज सचित ,महापौर,सांसद, तथा देश के कोने-कोने से पधारे लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार, गणमान्य नागरिकों तथा विशाल जनसमूह की गरीमामय उपस्थिति के मध्य दादा का नागरिक अभिनन्दन किया गया. देश की कई नामी-गिरामी साहित्यिक संस्थाओं ने भी दादा को ,स्मृति चिन्ह भेंट किए.

इस भव्य समारोह में मुझे जाने का अवसर प्राप्त हुआ था. एक व्यक्ति के सम्मान के लिए प्रदेश के मुखिया सहित अनेक मंत्री, देश के कोने-कोने से पधारे साहित्यकार,अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधि तथा विशाल जनसमूह की उपस्थिति को देखकर सहज ही उस व्यक्ति की विराटता का अनुमान लगाया जा सकता है कि वह कितना जनप्रिय है.

. चाणक्य ने एक जगह लिखा है-"प्रियभाषी का कोई शत्रु नहीं होता. यह वास्तविकता है. जन-जन में संवाद शैली में गरिमा और मधुरता होनी चाहिए. शब्दों का अस्तित्व सर्वाधिक प्रबल होता है.उनके अपने संस्कार होते हैं. शब्द एक उर्जा है. शब्द ब्रह्म भी है. जिसने शब्द-ब्रह्म की उपासना की हो,जो जन-जन का प्रिय हो,उससे भला

किसकी शत्रुता हो सकती है." दादा के पास प्रेमभाव है, सेवा भाव है. सेवाभाव से सदा प्रेम ही उपजता है. यही कारण है कि वे जन-प्रिय हैं. इसीलिए उनकी बातें ध्यान से सुनी जाती है. फ़िर वे एक अच्छे नाविक की तरह है, जो अपने लोगों को साथ लेकर यात्रा करता है. उनका मार्गदर्शन करता है. वे केवल मार्ग ही नहीं दिखलाते अपितु एक सच्चे हितैषी की तरह-/एक बडॆ भाई की तरह पूरे समय साथ बने रहते हैं.

हेनरी फ़ोर्ड ने अपने वक्तव्य मे लिखा है-" आपका सच्चा मित्र वही है,जो आपके भीतर छिपे सर्वश्रेष्ठ को बाहर निकाले" सच है, जहां प्रतिभा चलती है,वही पथ बन जाता है. और श्रेष्ठी जिस मार्ग से चलते हैं,लोग उसका अनुसरण करते हैं. यही एकमात्र एक ऎसा कारण था कि लोग दादा के साथ पडॆ और धीरे-धीरे कारवां बनता चला गया.

मेरा अपना मानना है कि भौतिक उपलब्धियां प्राप्त करने और आध्यात्मिक उपलब्धियां प्राप्त करने के अलग-अलग मार्ग हैं. आध्यात्मिक उर्जा प्राप्त करने के लिए अपने आपको तपाना पडता है. स्वयं प्रकाशित होना होता है,तब कहीं जाकर आप दूसरों का पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं.वेदों में ऋषियों ने आव्हान किया है कि -"हम निरन्तर श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होते रहें. प्रकाश को ग्रहण करें और प्रकाशवन हो जाएं" दादा ने अपने आपको तपाया है और स्वयं प्रकाशित्र हुए है, और हमारा सबका पथ आलोकित कर रहे हैं. सच माने में दादा एक विराट लाइट हाउस की तरह हैं

कवि दिनकर की जयन्ती पर, दक्षिण अफ़्रीका के जोहान्सबर्ग मे 9 वां विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है. २२ सितम्बर से २४ सितम्बर तक चलने वाले इस तीन दिनी सम्मेलन में , भारत सहित दुनिया के अनेक देशों के हिन्दी प्रेमी उत्साह पूर्वक शामिल होगे.

इस अवसर पर हिन्दी भवन के संचालक, वर्धा समिति के मंत्री श्री कैलाशचन्द्र पंतजी के समग्र अवदानों के देखते हुए उन्हें विश्व मंच पर सम्मानित किया जाएगा.

मैं अपने परिवार के सदस्यों सहित,समिति के सभी पदाधिकारियों, कार्यकर्ताओं एवं अन्यान्य मित्रों की ओर से माननीय श्री कैलाशचन्द्र पंतजी को शुभकामनाएँ तथा बधाइयां प्रेषित करता हूँ. ईश्वर से हमारी प्रार्थणा है कि आप दीर्घायु हों और इसी तनमयता के साथ हिन्दी को उस मुकाम तक ले जाने जाएं,जिसकी वह अधिकारी है और साथ ही हमारा मार्गदर्शन करते रहें//आमीन//

राष्ट्र कवि दिनकरजी का यह जयंती वर्ष भी है.

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सभी गणमान्य सहयोगियों,साहित्यकारों और छिन्दवाडा शहर की सभी साहित्यिक संस्थाओं और नागरिकों की ओर से आदरणीय दादा पंतजी और दादा बालकवि बैरागी कॊ हार्दिक शुभकामनाएं एवं बधाइयां देती है और इनके दीर्घायु होने की मंगल कामनाएं करती है. आमीन.

कवि दिनकरजी की जयंती पर 22 सितम्बर 2012 की जोहानसबर्ग(दक्षिण अफ़्रीका में 9वां हिन्दी विश्व सम्मेलन बाईस सितम्बर से चौबीस स्सितम्बर २०१२(तीन दिन) का आयोजन किया गया है. इसमें दादा श्री कैलाशचन्द्र पंत जी का सम्मान किया जाएगा. दादा के साथ ही मध्यप्रदेश के ख्यात लब्ध सांसद सम्मानीय श्री बाल कवि बैरागी जी का भी सम्मान व्चिश्व हिन्दी सम्मेलन में किया जाएगा. यह सममान दक्षिण अफ़ीका में गांधी के नाम से विख्यात श्री नेल्सन मंडेला जी के हस्ते प्रदत्त किया जाएगा.

....

6
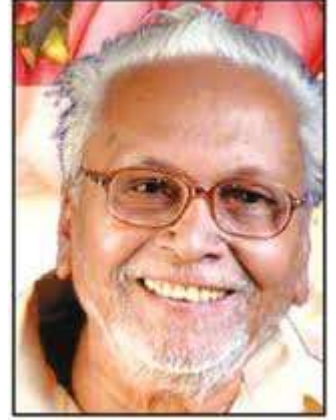
जनकवि श्री बालकवि बैरागी.

** आलोचना की परवाह मत करो. संसार मे आलोचकों के स्मारक नहीं बनते. जो तना अपनी कोंपल का स्वागत नहीं करता, वह ठूंठ हो जाता है** --------बालकवि बैरागी ---------

एक ऎसा मस्तमौला कवि, जो बडी से बडी बात को, अपनी कविता में सहज और सरल ठंग से कह जाता हो, जिसे व्यक्त करने में हम अपने आपको असमर्थ पाते हैं, जिसकी कविता में भारतीय ग्राम्य संस्कृति की सौंधी-सौंधी गंध रची-बसी हो, जो लोगों के जुबान पर चढकर बोलती हो, एक ऐसा हाजिर जवाबी कवि, जिसने गली-कूचों से चलते हुए, देश की सर्वोच्च संस्था,जिसे हम संसद के नाम से जानते है,सफ़र तय किया हो, जिसे घमंड छू तक नहीं गया हो., जो खास होते हुए भी आम हो, ऎसे जनकवि के लिए अतिरिक्त परिचय की दरकार नहीं होती. ऎसी ही एक अजीम सख्सियत का नाम है-बालकवि बैरागी.

दस फ़रवरी सन उन्नीस सौ इकतीस में, मनासा जिले की तहसील के रामपुर में जन्में दादा बालकवि, अपने बचपन से ही कविता रचते और उसे पूरी तनमयता के साथ गाते थे. विक्रम विश्वविद्यालय से हिन्दी में आपने एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की. साहित्य में जितनी पकड आपकी रही,राजनीति में भी आप हमेशा अव्वल ही रहे. वे मध्यप्रदेश सरकार में मंत्री भी रहे. दौरे में जहां भी जाते, अपने साहित्यकार मित्रों से मिलते और फ़िर जमकर काव्य-रस की बरसात होती रहती राजनीति में उन्हें जितनी शोहरत मिली,मंचों पर भी उन्हें उतना ही प्यार और सम्मान प्राप्त हुआ. किसी शुभचिंतक ने इन्हीं बातों को लेकर उनसे प्रश्न किया तो उन्होंने जवाब में कहा- "साहित्य मेरा धर्म है, और राजनीति मेरा कर्म". गहनता लिए हुए उनके इन्हीं शब्दों से, उनके व्यक्तित्व कॊ नापा जा सकता है.

मुझे कई बार दादा को मंचों पर सुनने का मौका मिला है. उस समय पर होने वाले कवि-सम्मेलनों की आन-बान-शान अलग ही होती थी.मंचों पर आलदर्जे के कविगण होते थे. श्रोताओं को साहित्य से भरपूर रचनाएं सुनने को मिला करती थी. कवि-सम्मेलन तो अब भी हो रहे हैं,लेकिन उनमें केवल चुटकुले ही सुनने को मिलते है. जब तक रचनाओं में साहित्य का पुट नहीं होगा,कोई भी रचना सरस कैसे हो सकती है?.ग्राह्य कैसे हो सकती है?

आपके अब तक चार-पांच काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं,-गौरव गीत, दरस दीवानी,दोदुका, भावी रक्षक देश के आदि-आदि. " मैं अपनी गंध नहीं बेचूंगा" काफ़ी लोकप्रिय कविता है, इस कविता से सहज ही उनके आत्मगौरव को, देश के प्रति उनके समर्पण को देखा-समझा जा सकता है.

दादा ने मंचों पर गीत ही नहीं पढे, अपितु फ़िल्मों के लिए भी गीत लिखे." रेशमा और शेरा" का वह गीत ,कोई भुलाए कैसे भूल सकता है. " तू चन्दा....मैं चांदनी- तू तरुवर ..मैं शाख रे...तू बादल ....मैं बिजुरी...तू पंछी.... मैं पांख रे....... लताजी की खनकदार आवाज, जयदेव का संगीत और दादा के बोल. तीनों मिलकर एक ऎसा कोलाज रचते हैं,जिसमे श्रोता बंधा चला जाता है. ..गीत सुनते ही लगता है जैसे आपके कानों में किसी ने मिश्री घोल कर डाल दी हो. इस गीत में मिठास के साथ-साथ, एक तडफ़ है,,,एक दर्द है. गीत के बोल ही कुछ ऎसे हैं,जो आपको अन्य लोक में ले जाते हैं..वसन्त देसाई की संगीत-रचना, दिलराज कौर की सुरीली आवाज मे फ़िल्म" रानी और लालपरी का गीत " अम्मी को चुम्मी....पप्पा को प्यार" वाला गीत हो, अथवा संगीतकार (आशा भोंसले के सुपुत्र) हेमन्त भोंसले की संगीत रचना में फ़िल्म "जादू-टोना" का गीत हो, अथवा दो बूंद पानी, अनकही, वीर छत्रसाल, अच्छा बुरा के गीत हो, दादा की शब्दरचना आपको मंत्र मुग्ध कर देने में सक्षम है. सन १९८४ में "अनकही"फ़िल्म का गाना---"मुझको भी राधा बना ले नंदलाल,"सुनते ही बनता है.

दादा को जब भी सुना, मंचों पर सुना. कभी ऎसा मौका नहीं आया,जब उनसे प्रत्यक्ष मुलाकात अथवा बातचीत हुई हो.

जुलाई 2008 के अंत में मेरा दूसरा कहानी संग्रह "तीस बरस घाटी" वैभव प्रकाशन रायपुर से प्रकाशित होकर आया. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भोपाल में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाली पावस व्याख्यानमाला के निमंत्रण पत्र आदि छापे जा चुके थे, और मैं चाहता था कि इस पावन अवसर में मेरे संग्रह का विमोचन हो जाना चाहिए. मैंने अपनी समस्या से माननीय पंतजी को अवगत कराया और अपनी मंशा जाहिर की. दादा पंतजी ने मुझसे कहा कि संग्रह की कम से कम दस प्रतियाँ लेकर आप आ जाना. उसका विमोचन हो जाएगा. दादा का आश्वासन पाकर मैं प्रसन्न था, लेकिन इस बात को लेकर चिंतित भी था कि विमोचन किन महापुरुष के हस्ते विमोचित होगा?

तृतीय विमश सत्र के विषय-शती स्मृति-राष्ट्रीय उर्जा के कवि रामधारी सिंह "दिनकर" पर अपना वक्तव्य देने के लिए मंच पर श्री अनिरुद्ध उमट, डा. श्री कृष्णचन्द्र गोस्वामी, श्री बी.बी.कुमार, श्री केशव "प्रथमवीर", डा.श्रीराम पारिहार, श्री शंभुनाथ, श्री अरुणेश नीरन और कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे थे हमारे दादा श्री बालकवि बैरागीजी. इसी सत्र में मेरे संग्रह का विमोचन होना था. सत्र शुरु होने से पहले सारी औपचारिकता पूरी कर ली गई थी.

(कहानी संग्रह "तीस बरस घाटी" को विमोचित करते बैरागीजी तथा अन्य सदस्य)

मैं रोमांचित था. वह दुर्लभ क्षण नजदीक आता जा रहा था और वह समय भी आया,जब दादा ने उसे विमोचित किया. मेरे लिए यह प्रथम अवसर था जब मैं दादा से रुबरु हो रहा था. उसके बाद से नजदीकियां बढी और अब कम से कम माह मे एक अथवा दो बार दादा से फ़ोन पर वार्ता हो जाती है. इस कार्यक्रम के काफ़ी समय पश्चात मुझे नाथद्वारा जाने का अवसर प्राप्त हुआ. नाथद्वारा मे स्थित साहित्यिक मंच"साहित्य-मण्डल नाथद्वारा" द्वारा मुझे सम्मानीत किया जाना था. मैं अपने मित्र मुलताई निवासी श्री विष्णु मंगरुलकर जी के साथ यात्रा कर रहा था. यात्रा का सारा कार्यक्रम इटारसी आने के पहले ही गडबडा गया. संयोग यह बना कि मुझे भोपाल रात्रि विश्राम करना पडा. आगे की यात्रा में रतलाम रुकना पडा. फ़िर अगली सुबह छः बजे की ट्रेन से आगे की यात्रा करनी पडी. रास्ते में "मनासा" स्टेशन पडा. दादा की याद हो आयी. दरअसल वहाँ रुकने का कार्यक्रम पहले से ही तय था, लेकिन समय साथ नहीं दे रहा था. वैसे ही हम एक दिन देरी से चल रहे थे, और हमें अभी आगे सफ़र जल्दी तै करना था. स्टेशन से दादा को फ़ोन लगाया और अपने नाथद्वारा जाने का प्रयोजन बतलाया. मेरा मन्तव्य सुनने के बाद उन्होंने कहा-"गोवर्धन भाई, समय मिले तो जरुर आना". उन्होंने बडी ही आत्मीयता के साथ मुझे

अपने गांव आने का निमंत्रण दिया था,लेकिन चाहकर भी हम मनासा रुक नहीं सकते थे. मुझे विश्वास है कि वह समय एक दिन जरुर आएगा,जब हम दादा के गांव में होंगे. उनके साथ.....अपने साथियों के साथ.

तीन दिनी (22 सितम्बर से 24 सितम्बर 2012) नौवां विश्व हिन्दी सम्मेलन जोहान्सबर्ग-दक्षिण अफ़्रीका मे शुरु होने जा रहा है. माननीय दादा श्री बैरागीजी, इस ऎतिहासिक अवसर पर सम्मानीत होने जा रहे हैं. दक्षिण अफ़्रीका में गांधी के नाम से विख्यात श्री नेलसन मंडेला के हस्ते आपको सम्मानित किया जाएगा.

मैं अपने परिवार की ओर से, मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जिला इकाई छिन्दवाडा के समस्त पदाधिकारियों-सदस्यों तथा जिले में कार्यरत सभी साहित्यिक संस्थाओं की ओर से आपको कोटिशः बधाइयां और शुभकामनाएं देता हूँ.

अपनी उम्र के अस्सीवें पडाव पर, दादा आज भी उतने ही सक्रीय हैं,जितने वे पहले रहे हैं.. परमपिता परमेश्वर से प्रार्थणा है कि वे दीर्घायु प्राप्त करें और देश की सेवा के साथ-साथ, साहित्य सृजन करते रहें और गीतों के नायाब मोतियों की अनुपम सौगातें, हमें देते रहें.

....

(रंगमंच)

7 (o) भारतीय नाटक की उत्पत्ति व विकास

इस बात के प्रमाणिक हैं हमारे वेद कि विश्व में सर्वप्रथम नाटक की उत्पत्ति तथा विकास भारत में ही हुआ था. ॠगवेद के कतिपय सूत्रों में यम और यमी, और पुरुरवा और उर्वशी आदि के कुछ संवाद हैं. विद्वान लोग इन संवादों को नाटक के विकास का चिन्ह पाते हैं. अनुमान किया जाता है कि इन्हीं संवादों से प्रेरणा ग्रहण कर नाटक की रचना की गई थी.

. नाट्यकला दैवीय उत्पत्ति भी मानी जाती है. ऎसा कहा जाता है कि सतजुग के बीत जाने के बाद, त्रेतायुग के आरंभ में देवताओं ने मंत्रणा की और यह अनुभव किया कि सतजुग में सर्वत्र सुख की वर्षा होती रही लेकिन त्रेता में, दुख के संकट भी घिरने लगेंगे. अतः इससे निजाद पाने के लिए किसी ऎसे ग्रंथ की रचना की आवश्यकता महसूस की गई जिसका अनुशीलण करने से, आदमी राहत महसूस कर सके. सारे देवता ब्रह्मलोक गए और उन्होंने ब्रह्मदेव से प्रार्थना की कि कोई ऎसी कला प्रकट करें जिससे श्रवणशक्ति और आँखों की रोशनी बढे, मन आनन्दित हो. वह पाँचवा वेद हो, मगर उन चारों वेदों की तरह न हो. उससे लाभ पाने का हक, हर जाति, हर वर्ग, हर धर्म के लोगों को हासिल हो. ब्रहमाजी ने ॠग्वेद से संवाद, सामवेद से नगमा यानि संगीत,, यजुर्वेद से स्वांग(अभिनय) और अथर्ववेद से जज्बातनिगारी(रस) जैसे कलाओं के तत्वों को मिलाकर नाटक का प्रणयन किया. शिव ने

ताण्डव(नृत्य) और पारवती ने लताफ़त(नरमी) की बुदतरी की, विश्वकर्मा को हुक्म दिया गया कि वह निगारखाने(नाट्यमंच) बनाए. फ़िर इसे भरत मुनि के हवाले किया गया ताकि वो जमीन पर आकर उडते रंग-रुप में पेश करें. इस् तरह भरतमुनि को इस खुदाई फ़न, अर्थात नाट्य-शास्त्र के रचियता होने का श्रेय हासिल हुआ.

अतः यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि इस कला का प्रादुर्भाव सबसे पहले भारत में हुआ. कुछ इतिहासकार, भरतमुनि के इस काल को ४०० ई.पू. के निकट मानते हैं. इस अद्भुत ग्रंथ में संगीत, नाटक, अभिनय के नियमों का आकलन भर नहीं है,बल्कि अभिनेता, रंगमंच और प्रेक्षक,इन तीन तत्वों की पूर्ति आदि तथ्यों का विवेचन किया गया है. ३७ अध्यायों में मुनि ने रंगमंच, अभिनेता, अभिनय, नृत्य गीत, वाद्य , रसनिस्पत्ति आदि का विवेचन किया था.

इस ग्रंथ की सर्वाधिक प्रामाणिक और विद्वत्तापूर्ण टीका, श्री अभिनव गुप्तजी ने सन १०१३ में किया था. जिसमे विषय वस्तु, पात्र, प्रेक्षागृह, रसवृत्ति, अभिनय, भाषा, नृत्य, गीत, वाद्ययंत्र,,पात्रों के परिधान, प्रयोग की जाने वाली धार्मिक क्रिया,,नाटक के अलग-अलग वर्ग, भाव, शैली, सूत्रधार, विदूषक, गणिका, नायिका आदि पात्रों में किस प्रकार की कुशलता अपेक्षित है-विचार किया गया है.

संस्कृत साहित्य में अनेक उच्चकोटि के नाटक लिखे गए..साहित्य में नाटक लिखने की परिपाटी संस्कृत से होते हुए हिन्दी में आयी. संस्कृत के अलावा पालि के ग्रंथों में भी नाटक लिखे जाने के प्रमाण मिले हैं. अग्निपुराण, शिल्परत्न, काव्यमीमांसा तथा संगीत -मार्तण्ड में राजप्रसाद के नाटकमंडपों के विवरण प्राप्त होते हैं. इसी तरह महाभारत मे रंगशाला के उल्लेख मिलते हैं. हरिवंशपुराण में रामायण के नाटक खेले जाने का वर्णण मिलता है. पाश्चयात विद्वानो की धारणा है कि धार्मिक कृत्यों से ही नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ. इससे रंगस्थली की कल्पना की जा सकती है. दर्शकों के बैठने की उत्तम व्यवस्था थी.

संस्कृत नाटक रस प्रधान होते हैं. संस्कृतकाव्य परम्परा मे, नाटक काव्य का ही एक प्रकार है. इसमे दर्शक को अपनी आंखों से देखने और कानों से सुनने का भी रसास्वादन मिलता है. अतः इससे सहज जुडाव भी होता है. कहा गया है-"काव्येषु नाटकं रम्यम." इन नाटको में, लेखन से लेकर प्रस्तुतिकरण तक कई कलाएं,, भावों, अवस्थाओं से युक्त, क्रियायों के अभिनय, कर्म द्वारा संसार को सुख-शांति देने वाले होने के कारण नाट्य हमारे यहां विलक्षण कृति माने गए हैं. कहा गया है-"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला/नासौ योगो न तत्कर्म नाट्योऽस्मिन्यत्र न दृष्यते" संस्कृत नाटक के प्रमुख नाटककार कालिदास, भास, शुद्रक आदि की गणणा प्रमुख रुप से की जाती है.

<u>हिन्दी में नाटक-</u>

परिभाषा–"नाटक काव्य का ही एक रुप है,जो रचना श्रवण द्वारा ही नहीं अपितु, दृष्टि द्वारा भी दर्शक के हृदय में रसानुभूति कराती है. उसे नाटक या दृष्यकाव्य कहते है.

२.नाटक में श्रवण काव्य से अधिक रमणीयता होती है.

३.श्रवणकाव्य होने से लोकचेतना से अधिक घनिष्ठता होती है.

४.नाट्यशास्त्र में लोकचेतना को नाटक के लेखन और मंचन की मूल प्रेरणा माना गया है.

नाटक के प्रमुख तत्व.-

१.कथावस्तु–पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक या सामाजिक हो सकती है.

२-पात्रों का सजीव और प्रभावशाली चरित्र, नाटक की जान होती है. कथावस्तु के अनुरुप नायक धीरोदात्त, धीर, ललित होना चाहिए.

३.रस-नाटक मे नवरसों में से केवल आठ का ही परिपाक होता है. इसमें शांत रस निषिद्द माना गया है. वीर रस या श्रृंगार-रस में से कोई एक नाटक का प्रधान रस होता है.

४. अभिनय- (१)आंगिक अभिनय (२) वाचिक अभिनय (३)आहार्य--वेषभूषा-मेकअप-स्टेज विन्यास,तथा भरपूर प्रकाश व्यवस्था होना आवश्यक होता है.

५)सात्विक अभिनय---पात्र जब डूबकर अपना अभिनय करता है तो वह नाटक में जान डाल देता है.

लोकनाट्य अथवा नाटक का लोकजीवन से घनिष्ट संबंध है. लोकनाट्य का मंचन उत्सवों, मांगलिक कार्यों अथवा विवाह आदि के अवसर पर किया जाता है. लोकनाट्य की भाषा अत्यन्त ही सरल, सीधी-सादी और रोचकता लिए हुए होती है. नटों के द्वारा भी लोकनाट्य रचे जाते हैं. नटों द्वारा खेले जाने वाले लोकनाट्यों में कथानक, ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा सामाजिक आधार वाले होते है, अभिनीत किए जाते हैं .इसके लिए कोई विशेष मंच बनाने की आवश्यकता नहीं पडती. नट के आसपास ,कुछ दूरी बनाकर दर्शक बैठकर अथवा खडॆ रहकर, उसके द्वारा रचे जा रहे अभिनय को निहारते है,और आनन्दित होते है..

बंगाल का लोकनाट्य" जात्रा" के नाम से जाना जाता है. बंगाल के अलावा "जात्रा", उडिसा तथा पूर्वी बिहार में भी आयोजित किए जाते है. इसमे धार्मिक आख्यान होते हैं. राजस्थान में अमरसिंह राठौर की ऐतिहासिक गाथा का अभिनय किया जाता है. केरल में लोकनाट्य "यक्षगान" के नाम से जाना जाता है. उत्तरप्रदेश में रामलीला - रासलीला का मंचन किया जाता है. मध्यप्रदेश के मालवांचल में "मांच(मंच का अपभ्रंश), महाराष्ट्र में "तमाशा", गुजरात में "भवई",कर्नाटक में "यक्षगान", तमिलनाडु में" थेरुबुडु", बुंदेलखंड में" भंडैती", "रहस",कांडरा",स्वांग, गोवा का अनोखा नाट्य-"त्रियात्र", हरियाना का सांग, उत्तराखंड की केदार घाटी में-"चन्क्रव्यूह", हिमाचल की निचली तराई-बिलासपुर में स्वांग, मंडी में बांठना, सिरमौर और शिमला में करियाला,, चांबा में हरण, ऊना और सोलन मे-धाजा, बिहार में बिदेसिया, अवध में रामायण, छतीसगध में नाचा-तथा करमा, केरल में मूडीयेटटु आदि लोकनाटिका का मंचन किया जाता है. लोकनाट्य को लेकर राजस्थान के तीन क्षेत्र चिन्हित किए गए हैं (१)उदयपुर, डूंगीपूर, कोटा, झालावाड,सिरोही (२)जोधपुर, बीकानेर, शेखावट, जयपुर(३) राजस्थान का पूर्वांचल जिसमें शेखावट, जयपुर भरतपुर, धौलपुर प्रांत आते हैं.यहाँ नाटक कई रुपों में मंचित किए जाते हैं. कहने का तात्पर्य यह है कि संपूर्ण भारतवर्ष में नाटक मंचित किए जाने के प्रमाण मिलते हैं ,भले ही वे अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं.

पाश्चात्य रंगमंच-

प्राचीन सभ्यता में चौथी शती ई.पूर्व यूनान और रोम के रंगमंच आकार ले चुके थे. इतिहास प्रसिद्ध डयोनीसन का थिएटर एथेंस में आज भी उस काल की याद दिलाता है. एक अन्य थिएटर है “एपोडारस “जिसका नृत्यमंच गोल आकार में है. ३६४ ई.पू. रोमवाले इट्रस्कन अभिनेताओं की मंडली अपने नगर लाए और उनके लिए “सर्कस कैक्सियस” में पहला रोमन रंगमंच तैयार किया. इस तरह रंगमंच प्रारंभिक रुप मे आया. सीजर तथा आगस्टस ने रोम को बहुत उन्नत किया. पांपेई का शानदार थिएटर तथा एक अन्य(पत्थर का) थिएटर उसी के बनवाए बताए जाते हैं.

प्रथम चरण-

१/-रोमीय परम्परावाल विसेंजा रंगमंच(१५८०-८५)जिसमें बाद में दीवार के पीछे वीथिकाएं जोडी गई .

२)सैवियोनेटा में स्कमोजी ने इन विथिकाओं को मुख्य रंगमंच से मिला दिया(१५८८ई)

३)इमिगो जोंस ने बाद में इन्हें रंगमंच ही बना दिया.

४)१६१८-१९ में परमा थिएटर में, रंगमंच पीछे हो गया और पृष्ठभूमि की चित्रित दीवार आगे आ गई.

लगभग दूसरी शती ईसवीं में रंगमंच कामदेव का स्थान माना जाने लगा. ईसाइयत के जन्म लेते ही पादरियों ने नाट्यशाला को हेय मान लिया. गिरजाघरों ने थिएटर का ऎसा गला घोटा कि वह आठ शताब्दियों तक पनप न सका.. उन्होंने रोमन साम्राज्य का पतन का मुख्य कारण थिएटर को ही माना. रोमन रंगमंच का अंतिम संदर्भ ५३३ ई. का मिलता है. बावजूद इसके चोरी-छिपे नाटक खेले जाते रहे. इतालवी पुनर्जागरण के साथ वर्तमान रंगमंच का जन्म हुआ. चौदहवीं शताब्दी में फ़िर से नाट्यकला का जन्म हुआ और लगभग १६वीं शताब्दी में उसे प्रौढता प्राप्त हुई. कई उतार-चढाव के बाद १८वीं-१९वीं शती में रंगमंच के विकास का आदर्श माना गया.

पुनर्जागरण का दौर सारे यूरोप में फ़ैलता हुआ एलिजाबेथ काल में इंग्लैंड जा पहुँचा. सन १५७४ तक वहां एक भी थिएटर नहीं था. लगभग पचास वर्षों में यह अपने चरम पर जा पहुंचा.और फ़िर इटली, फ़्रांस, स्पेन तक जा पहुंचा. १५९०-१६२० का काल शेक्सपियर का काल रहा. रंगमंच विशिष्ट वर्ग का न होकर, जनसामान्य के मनोरंजन का साधन बना.

आधुनिक रंगमंच

रंगमंच

रंगमंच यानि थिएटर,वह स्थान है,जहाँ नृत्य, नाटक, खेल आदि हों. रंगमंच शब्द रंग और मंच दो शब्दों की युति से बना शब्द है. रंग इसीलिए प्रयुक्त हुआ कि दृष्य को आकर्षक बनाने के लिए दीवारों, छ्तों और पर्दों पर विषेश प्रकार की और विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती है और अभिनेताओं की वेषभूषा तथा सज्जा में भी विविध रंगों का प्रयोग होता है और मंच इसीलिए प्रयुक्त हुआ कि दर्शकों की सुविधा के लिए रंगमंच का तल

फ़र्श से कुछ ऊँचा रहता है. दर्शकों के बैठने के स्थान को प्रेक्षागार और रंगमंच सहित समूचे भवन को प्रेक्षागृह, रंगशाला या नाट्यशाला कहते हैं. पश्चिमी देशों में इसे थिएटरया आअपेरा नाम दिया जाता है.

आधुनिक रंगमंच का वास्तविक विकास १९ वीं शती के उत्तरार्ध में आरंभ हुआ और एक भव्यतम रुप सामने आया.लेकिन यह स्वरुप ज्यादा दिन न टिक सका. विज्ञान के नए-नए अविष्कारों ने जन -जीवन पर व्यापक प्रभाव डाला. मूक सिनेमा, फ़िर सवाक सिनेमा ने जनमानस को अपनी ओर तेजी से आकृष्ट किया. थिएटर से कुछ मोह भंग हुआ और सिनेमा का आकर्षण बढता गया. क्योंकि इसमे ग्लैमर और पैसा दोनो है.

स्वतंत्रता पश्चात १९५१ में आयोजित एक कला सम्मेलन नई दिल्ली में, विचार किया गया कि नृत्य,नाटक और संगीत की राष्ट्रीय अकादमियाँ खोली जाए. ३१ मई १९५२ में तत्कालिन शिक्षा मंत्री श्री मौलाना अब्दुल्द कलाम आजाद की उपस्थिति में अकादमी की नीव रखी गई, २८ जनवरी १९५३ को डा.राजेन्दप्रसादजी ने इस अकादमी को विधिवत उद्घाटित किया.

भारतीय नाट्य परम्परा को नित नई उँचाइयाँ देने में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र,,जयशंकरप्रसाद,कमलेश्वर, जगदीशचन्द्र मथुर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रामकुमार वर्मा, मोहन राकेश, स्वदेश दीपक, नाग बोडस, हरिकृष्ण प्रेमी ,धर्मवीर भारती, नंदकिशोर आचार्य, आदि विद्वानों ने बेहतरीन नाटकों की रचना की. उनके द्वारा लिखे गए नाटकों की सर्वत्र सराहना हुई और आज भी वे जगह-जगह मंचित किए जा रहे हैं.

कई दिग्गज फ़िल्म -अभिनेता तो आज अपने चर्मोत्कर्ष पर हैं, सबके सब स्टेज कलाकर रह चुके हैं.कुछ तो सिनेमा में इतने व्यस्त हो गए हैं कि इन्हें स्टेज(रंगमंच) पर जाने का समय ही नहीं मिल पाता, बावजूद इसके उनके मन में अब भी रंगमंच को लेकर अगाथ श्रद्धा और समर्पण का भाव मौजूद है.

नाटकों की बात हो और नुक्कड नाटक पर बात न की जाए तो शायद अधुरा सा लगेगा. समय के साथ नुक्कड नाटक भी कलाकारों द्वारा खेले गए. इसमे किसी थिएटर अथवा किसी नाट्यगृह की आवश्यक्ता नहीं पडती. कलाकार जिसमे पात्रों की संख्या कम से कम "एक" या आवश्यकतानुसार कुछ ज्यादा भी हो सकती है, द्वारा गली-गली में जाकर अपने अभिनय से दर्शकों तक अपनी बात पहुंचाते है, जिसे हम नुक्कड भी कह सकते हैं, वे अपनी प्रस्तुति द्वारा समाज में फ़ैल रही विसंगतियों पर कडी चोट करते हैं अथवा कोई ऎसा संदेश देना चाहते हैं जो समाज के लिए उपयोगी हो,के विषय के मूल में जाकर छिपे संदेश को जन-जन तक पहुँचाते है. इसमे कोई तामझाम नहीं करनी पडती और न ही कोई विशाल मंच बनाने की जरुरत ही पडती है. इससे यह फ़ायदा हुआ कि जो लोग नाटकों से जुड नहीं पाए अथवा समयाभाव के कारण मंच तक नहीं भी जा पाए तो उन्हें घर बैठे इसका आनन्द उठाने को मिल जाता है. अतः कहा जा सकता है कि नाट्यविधा का भविष्य आगे भी सुरक्षित रहेगा और आए दिन नए-नए नाटक मंचित किए जाते रहेंगे.

गोटमार मेला

--------- --

चित्र-विचित्र मेला -गोटमार मेला

यह देश विविधताओं से भरा हुआ देश है. तीन अलग-अलग मौसमों में,आदमी कभी बारिश में भींगता, तो कभी ठंड में ठिठुरता, तो कभी चिलचिलाती धूप में हलाकान-परेशान हो उठता है, लेकिन हर मौसम में पडते तीज-त्योहारों और परम्पराओं में निमग्न होते हुए वह, उन पलों को बडी आत्मीयता के साथ, अपने आपको जोडते हुए, अपने को डुबो देता है,.जिससे उसे आत्मीय खुशी मिलती है. इस आत्मीक खुशी को हम चाहें तो आनन्द कह लें या फ़िर परमानन्द अथवा ब्रह्मानंद. आदमी की इसी जिजीविषा का ही परिणाम है कि वह दैहिक-दैविक और भौतिक तापों की जलन से अपनी आत्मा को लहुलुहान होने से बचा पाता है. ऐसा नहीं है कि केवल भारत में ही यह सब कुछ होता है, पूरी दुनिया में इसी तरह की जद्दोजहद चलती रहती है.

अभी बारिश का मौसम चल रहा है. बारिश के इस मौसम में भीगते हुए अभी हमने रक्षाबंधन का पवित्र पर्व मनाया. तो इसी क्रम में तीज-छट का त्योहार और श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व भी बडी धूमधाम से मनाया. इसी कडी में छिन्दवाडा जिले के पाण्ढुर्णा तहसील में जाम नदी के तट पर एक अजीबो-गरीब परम्परा में लिपटे हुए गोटमार मेले का आनन्द भी उठाया. पाण्ढुर्णा के इस मेले में जमकर पत्थर बरसते हैं. लोग जख्मी होते हैं. अंग-भंग होता है और कभी-कभी तो जान से भी हाथ धोना पडता है. है न ! अजीबो-गरीब परम्परा. इसे मात्र कोरी गप्प न मानें, यदि मन न माने इस बात पर विश्वास करने को, तो इस दिन यहाँ आकर अपनी आँखों से इसे होता हुआ देख सकते हैं..

माह अगस्त की अठारह तारीख को संपन्न हुआ,यह अजीबों-गरीब विश्व प्रसिद्ध मेला जिसे गोटमार के नाम से जाना जाता है, मनाया गया. पांढुर्णा मराठीभाषा का क्षेत्र है. गोट का अर्थ पत्थर होता है. इस दिन यहाँ जमकर पत्थरबाजी का खेल खेला जाता है.

(नदी के दोनो तरफ़ बडी संख्या में उमडा जनसैलाब)

किंवदती के अनुसार करीब तीन सौ साल पहले, पांढुर्णा के एक युवक को सांवरगांव में रहने वाली एक युवती से प्रेम हो गया. दोनो पक्ष के लोग इस विवाह के पक्ष में नहीं थे. युवक जब अपनी प्रेयसी को सांवरगांव से लेकर पांढुर्णा लाने लगा. यहां आने के लिए बीच में जाम नदी पडती है,जिसे पार करते हुए इस पार आया जा सकता है. दोनो बीच नदी में पहुंचे ही थे कि गांव वालों ने पथराव शुरु कर दिया. सांवरगांव के लोगो द्वारा पत्थरबाजी के जवाब में पांढुर्णा वालों ने भी पथराव शुरु कर दिया. इस पत्थरबाजी में कइयों को चोटें आयीं, कई सिर फ़ूटे, कुछ की जाने भी गई. अंतः वह युवक, युवती को लाने में सफ़ल हुआ.

भादों मास के कृष्ण पक्ष में ,अमावस्या को पोले के त्योहार के ठीक दूसरे दिन, जाम नदी के मध्य में शमी वृक्ष के पेड की टहनी गाडी जाती है और उस पर झंडा लगाया जाता है. पांढुर्णा के लोग इस झंडॆ कॊ लाने का पूरा प्रयास करते हैं और सांवरगांव के लोग पत्थर बरसा कर उन्हें रोकने का प्रयास करते हैं. इस तरह दोनो तरफ़ से पत्थरों की अनवरत बरसात होती है,जिसमे कई युवक गंभीर रुप से जख्मी हो जाते है. खून की नदियां बह निकलती है,लेकिन जांबाज लोग, बगैर जख्मों की परवाह किए निरन्तर आगे बढते हैं और झंडॆ कॊ लाने का उपक्रम करते हैं.

पिछली साल पूजा-वंदना के साथ शनिवार यानि 18 अगस्त को विश्वप्रसिद्ध गॊटमार मेला शुरु हुआ. सुबह से शुरु हुई पत्थरबाजी दोपहर बाद तक चलती रही. लोगों ने एक दूसरे पर जमकर पत्थर बरसाए. स्थानीय समाचार-पत्र के अनुसार पांढुर्णा पक्ष के 175 और सांवरगांव के 160 लोग घायल हुए. बुरी तरह से जख्मी 33 लोगों को स्थानीय सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र में भर्ती करवाया गया. पांच की स्थिति अत्यन्त ही नाजुक हो चली थी,जिन्हें तत्काल नागपुर रेफ़र कर दिया गया. इस तरह गोटमार शाम के छः बजे तक चलती रही. कोई निर्णय न होता देख,स्थानीय लोगों,अधिकारियों एवं जनप्रतिनिधियों ने आपसी सहमति बनाकर पत्थरबाजी रुकवाई. तत्पश्चात चंडी माता मंदिर में झंडॆ की पूजा-अर्चना की गई. इस तरह इस विचित्र किंतु सत्य मेले का समापन हुआ.

इस विश्वप्रसिद्ध गोटमार मेले में व्यवस्थाएं बनाने आला प्रशासनिक अधिकारियों ने पांढुर्णा और सांवरगांव में व्यवस्थाएं संभाल ली थी. उन्हौंने गोटमार मेले को रोकने के लिए विभिन्न आयोजन भी आयोजित किए ,बावजूद इसके वे इसे रोक पाने में असफ़ल हुए. इस मेले में 73 एस आई, 95 हेड कांस्टेबल, 454 आरक्षक सहित 645 पुलिसकर्मी तैनात कर दिए गए थे,जो मेले की सुरक्षा व्यवस्था संभाल रहे थे.इसके अलावा जिला सिवनी और नरसिंहपुर से भी पुलिस बल बुलाया गया था.

इस चित्र-विचित्र मेले को साकार रुप में दुनिया को दिखाने के लिए इसका फ़िल्मांकन भी करवाया गया था. सभी ने इसे हैरत के साथ देखा और सुना.

यह चित्र-विचित्र गोटमार मेला पुनः इस धरती पर भाद्र पदी 14 अर्थात दिनांक 24-08-2014 को खेला जाएगा. कोई नहीं जानता कितने लोग पत्थरों से घायल होंगे कितने लहुलुहान होगे और कितने लोग गंभीररुप से घायल होंगे? हालांकि सरकार की तरफ़ से पूरे बन्दोबस्त किए जाएंगे, कई आला अफ़सर यहाँ तैनात किए जाएंगे. डाक्टरों की फ़ौज भी यहाँ डॆरा डले हुए रहेगी. ऍबुलेस की गाडियां तैयार रहेगी, बडी संख्या में पुलिस बल उपस्थित होगा, इन सबके रहते हुए यह खतरनाक खेल अबाध गति से चलता रहेगा.

इससे पूर्व इस अजीबो-गरीब खेल को रोकने के कडॆ उपाय भी किए गए, लेकिन असफ़लता ही हाथ लगी. इस बार एक नयी पहल की गई है कि पत्थरों को उपयोग में लाने के बजाए टमाटर से इस खेल को खेला जाए. पहल तो अच्छी दिखाई देती है,लेकिन इसमें कितनी सफ़लता मिलती है, यह भविष्य़ के गर्त में छिपा है.

(छिन्दवाडा भास्कर-27-0802014) इस साल गोटमार मेले में पांढुरना के खिलाडी झंडा तोडने में असमर्थ रहे.खेलस्थल पर असंख्य पत्थरों और सैंकडीं खिलाडियों के बावजूद पांढुर्ना पक्ष असफ़ल रहा. रात करीब सवा आठ बजे दोनो पक्षों की सहमति से झंडा मां चंडिका के मन्दिर में लाया गया और पूजा अर्चना के बाद मेले का समापन किया गया.

सुबह आठ बजे मेले की शुरुआत हुई.दोपहर एक बजे तक धीमी गति से चलता रहा. शाम होते-होते घायलो की संख्या सात सौ से अधिक (पांढुर्ना से 275 और सांवरगांव से 230 लोगों के घायल होने की पुष्टि की है.)

....

प्रतीक-कविता में नए अर्थ भरता है.

(परिभाषा)

प्रतीक का अर्थ है" चिन्ह" किसी मूर्त के द्वारा अमूर्त की पहचान. यह अभिव्यक्ति का बहुत सशक्त माध्यम है. अमूर्त का मूर्तन अर्थात जो वस्तु हमारे सामने नहीं है, उसका प्रत्यक्षीकरण प्रतीकों के माध्यम से होता है. मनुष्य

अपने सूक्ष्म चिंतन को अभिव्यक्त करते समय इन प्रतीकों का सहारा लेता है. इस तरह ""मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है.

(२)अथवा-किसी वस्तु, चित्र, लिखित शब्द, ध्वनि या विशिष्ठ चिन्ह को प्रतीक कहते हैं, जो संबंध सादृष्य या परम्परा द्वारा किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है. उदाहरण- एक लाल कोण, अष्टकोण (औकटागौन), रुकिए(स्टाप) का प्रतीक हो सकता है. सभी भाषाओं में प्रतीक होते है, व्यक्तिनाम, व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतीक होते हैं.

प्रयोगवाद के अनन्त समर्थक अज्ञेय ने अपने चिंतन से कविता को नयी दिशा दी. उन्होंने परम्परागत प्रतीकों के प्रयोग पर करारा प्रहार करते हुए शब्दों मे नया अर्थ भरने की बात की. उनकी वैचारिकता से बाद के अशिकांश कवियो ने दिशा ली.और कविताओं में नए रंग भरने लगे. (इससे पूर्व महादेवी वर्मा ने अपनी कविता में "दीपक" को प्रतीक बनाया और एक नए चिंतन, नए आयाम, नए क्षितिज रचे थे.

प्रयोगवाद के के अनन्य समर्थक अज्ञेय की एक छोटी से कविता की बानगी देखिए

उड गई चिडिया
कांपी
स्थिर हो गई पाती

चिडिया का उडना और पत्ती का कांपकर स्थिर हो जाना बाहरी जगत की वस्तुएँ है. परन्तु कवि इस बात को कहना नहीं चाहता. वह इसके माध्यम से कुछ और ही कहना चाहता है. जैसे- किसी के बिछुडने पर मन के आंगन में मची हलचल, बैचेनी, घबराहट, असुरक्षा का भाव आदि का होना. फ़िर मन की हलचलों के शांत हो जाने के बाद की प्रतिक्रिया को वे बाहरी वस्तु जगत की वस्त्यों के लेकर एक प्रतीक रचते हैं.

यथार्थ के धरातल पर यदि हम चीजों को देखें तो लगता है कि कहीं जडता सी आ गयी है. हमारी अनुभूतियां, संवेदनाएं, यदि यथार्थपरक भाषा में संप्रेषित हो रही हैं, तो सपाटबयानी सा लगता है. दरअसल हम जो कहना चाहते हैं वह पूरी तरह से संप्रेषित नहीं हो पा रहा है...कुछ आधा-अधूरा सा लगता है. यदि वही बात हम "प्रतीक" के माध्यम से कहते हैं तो वह उस बात को नए अर्थों में खोलता सा नजर आता है. दूसरे शब्दों में कहें कि मनुष्य अपने सूक्ष्म चिंतन को अभिव्यक्त करते समय प्रतीकों का सहारा लेता है. इस तरह मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है. और वह प्रतीकों के माध्यम से ही अपनी बात को सोचता है. वैसे भी भाषा के प्रत्येक शब्द किसी न किसी वस्तु का प्रतीक-चिन्ह ही होते हैं. सामान्य शब्द का अर्थ जब तक वह सार्थक एवं प्रचलित रहता है- विभिन्न व्यक्तियों एवं विभिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न हो जाता है. "प्रतीक" की विवेचना करते हुए डा. नगेन्द्र कहते हैं कि,"प्रतीक" एक प्रकार से रुढ उपमान का ही दूसरा नाम है, जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रुढ हो जाता है तो "प्रतीक" बन जाता है. इस प्रकार प्रत्येक प्रतीक अपने मूल रुप में उपमान होता है. धीरे-धीरे उसका बिम्ब-रुप संचरणशील न रहकर स्थिर या अचल हो जाता है. डा. नामवरसिंहजी भी मानते हैं कि, बिम्ब पुनरावृत्त होकर "प्रतीक" बन जाता है.

उदाहरण स्वरुप= प्रयोगवाद के अनन्य समर्थक अज्ञेय की की एक कविता "सदानीरा" सादर प्रस्तुत है.

'   "सबने भी अलग-अलग संगीत सुना
इसकी
वह कृपा वाक्य था प्रभुओं का
उसको आतंक/मुक्ति का आश्वासन
इसको/वह भारी तिजोरी में सोने की खनक
उसे/बट्टुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सौंधी खुशबु
किसी एक को नई वधू की सहमी-सी पायल ध्वनि
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी
एक किसी जाल-फ़ांसी मछली की तडपन
एक ऊपर को चहक मुक्त नभ में उडती चिडिया की
एक तीसरे को मंडी की ठेलमठेल,ग्राहकों की अस्पर्धा भरी व
चौथे को मंदिर की ताल युक्त घंटा-ध्वनि
और पांचवे को लोहे पर- सधे हथौडे की सम चोंटें,
और छटे की लंगर पर कसमसा रही नौका पर लहरों की
अविराम थपक
बटिया पर चमरौंधों की संघी चाप सातवें के लिए
और आठवें की कुलिया की कटी मेंड से बहते जल की
इसे नमक...की एडी के घुंघरु की
उसे युद्ध का ढोल
इस संझा गोधूली कर लघु-चुन-दुन
उसे प्रलय का डमरुवाद
इसको जीवन की पहली अंगडाई

असाध्य वीणा में बिम्ब और प्रतीकों की जो गहन गहराती ध्वनि है वह बाद की कविता में दुर्लभ होती गई है.. इस देश की पूरी परम्परा और रीति-रिवाजों का और इस देश के भूभाग का विस्तृत अध्ययन अगर आपको करना हो तो यह कविता आपको वह सब बतला सकती है, जो बडॆ-बडॆ साहित्यकारों, इतिहासकारों और नृतत्वशास्त्रियों के बस का नहीं है,.देश केवल भौगोलिक मानचित्र पर बना देश नहीं होता, वह उस देश के असंख्य जीव-जंतुओं का भी होता है.

अज्ञेय की एक नहीं बल्कि अनेक कविताएं--मसलन-रहस्यवाद, समाधिलेख, हमने पौधे से कहा, देना जीवन, जितना तुम्हारा सच है, हम कृती नहीं है, मैंने देखा एक बूंद, नए कवि से, दोनो सच है, कविता की बात, पक्षधर, इतिहास बोध, आदि कविताएं हैं, जिनमें दर्शन या विचार अनुभूति की बिम्बभाषा में पूरी तरह आत्मसात हो जाते हैं.

अज्ञेय की एक कविता "कलगी बाजरे की' की बानगी देखिए

"अगर मैं तुमको
ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता
या शरद के भोर की नीहर-न्हायी-कुंई
टटकी काली चम्पे की
वैगरह तो
नही कारण कि मेरा ह्रदय उथलाया कि सूना है

या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है.

(२) नदी के द्वीप

हम नदी के द्वीप हैं
हम नहीं कहते कि हमको छोडकर स्त्रोतस्विनी बह जाए
वह हमें आकार देती है
हमारे कों,गलियाँ, अंतरीप,उभार,सैंकत-कूल
सब गोलाइयाँ उसकी गढी हैं
माँ है वह ! है उसे से हम बने हैं......मातः उसे फ़िर संस्कार तुम देना

यह पूरी कविता बिम्बों और प्रतीकों से सम्प्रेषित कविता है... एक विचार है. इससे पहले हिन्दी में एक रुढ मान्यता यह रही है कि आधुनिक काव्यभाषा बिम्बधर्मा होती है और वक्तव्य उससे अकाव्यात्मक चीज है, लेकिन नई कविता के शीर्ष कवि और सिद्धांतकार अज्ञेय ने महज इस कविता में ही नहीं बल्कि अपनी अनेक कविताओं में प्रतीक-बिम्ब और वक्तव्य की परस्पर अपवर्ज्यता को अमान्य किया है. कई दौरों में लिखी गई कविताएँ=जैसे= रहस्यवाद, समाधि-लेख, सत्य तो बहुत मिले, हमने पौधे से कहा, देना जीवन, अकवि के प्रति कवि, हम कृती नहीं है, मैंने देखा एक बूंद ,नए कवि से, चक्रांत-शिला, पक्षधर, कविता की बात आदि कविताओं में निःसन्देह कुछ ऎसी कविताएं है, जिनमे दर्शन, अनुभूति की बिम्बभाषा अपनी संपूर्णता के साथ समाए हुए हैं.

अपनी विचार-कविता (भवन्ती-१९७२) में वे लिखते हैं

"विचार कविता की जड में खोखल यह है कि विचार चेतन क्रिया है जबकि कविता की प्रक्रिया चेतन और अवचेतन का योग है, जिसमें अवचेतन अंश अधिक है और अधिक महत्वपूर्ण है......"विचार कविता" का समर्थक यह कहे कि उसमें एक स्तर रचना सर्जना का है, साथ ही दूसरा स्तर है जिसमें कल्पना से प्राप्त प्राक-रुपों बिम्बों में चेतन आयास से वस्तु या अर्थ भरा गया है, तो वह उस प्रकार की कविता को अलग से पहचानने में योगदान देगी, पर यह आपत्ति बनी रहेगी कि यह दूसरा स्तर तर्क-बुद्धि का स्तर है, रचना का नहीं. अर्थात "विचार कविता" कविता नहीं, कविता विचार है और ऎसी है तो उसकी "कविता" पर विचार करने के लिए "उसके विचार" को अलग देना होगा या [रसंगेतर मान लेना होगा."

देश और प्रदेश के ख्यातिलब्ध कवि श्री चन्द्रकांत देवतालेजी ने जातीय जीवन में व्याप्त क्रूरता और निरंकुशता को महसुस करके लिखी गई कविता "उजाड में संग्रहालय" की अन्तिम कविता का शीर्षक है="यहाँ अश्वमेघ यज्ञ हो रहा है". आज के घटित यथार्थ से मुठभेड की कविता. इसमें अश्वमेघ का घोडा और घण्टाघर की सार्वजनिक घडी "प्रतीक" बनकर वातावरण और ज्यादा तनावपूर्ण बनाते हैं. बरसों पहले मुक्तिबोध की कविता "अंधेरे में" भी एक शोभा यात्रा का वृतांत आया था, यहाँ भी है

जिस शोभा यात्रा में पिछलग्गुओं की भीड थी कित्ती
उसी का तो उत्तरकाण्ड इस महापंडाल में
नहीं,नहीं इस महादेश में भी

हर तरफ़ "अंधेरे में" का उत्तरकाण्ड
तब तो बस एक था डोमाजी उस्ताद
अब तो देखो जिसे वही वही वही...
हर दूसरा काजल के बोगदे में
तीसरा तस्कर मंत्र-जाप करता
चौथा आग रखने को आतुर बारुद के ढेर पर
और पहला कौन है क्या सत्तासीन अथवा बिचौलिया
बिका हुआ सज्जन
पाँचवा-छठा-सातवां फ़िर गिनती के बूते के बाहर संख्या में
शामिल होते हैं अन्दर जाते हैं–बाहर जाते हैं
पवित्र गन्ध से आच्छादित है नगर का आकाश
जिसका नगर कोई नहीं जानता
यहाँ अश्वमेघ यज्ञ हो रहा है (पृ.१५०)

विश्व विख्यात कवि श्री विष्णु खरे की एक कविता सिलसिला ("सब की आवाज के पर्दे में" संग्रह से)

कहीं कोई तरतीब नहीं
वह जो एक बुझता हुआ सा कोयला है
फ़ूँकते हुए रहना है उसे
हर बार राख उडने से
जिससे भौंहे नहीं आँख को बचाना है
वह थोडा दमकेगा
जलकर छोटा होता जाएगा
लेकिन कोई चारा नहीं फ़ूँकते रहने के सिवा
ताकि जब न बचे साँस
फ़िर भी वह कुछ देर तक सुलगे
उस पर उभर आई राख को
यकबारगी अंदेशा हो लम्हा भर तुम्हारी साँस का
अंगारे को एक पल उम्मीद बँधे फ़िर दमकने की
इतना अंतराल काफ़ी है
कि अप्रत्याशित कोई दूसरी साँस जारी रखे यह सिलसिला

इस कविता में कोयला एक प्रतीक है. उसमें धधकती आग को जलाए रखना जरुरी है ताकि उस पर रोटियाँ सेकी जा सके. देश में व्याप्त गरीबी-मुफ़लिसी-बेहाली-तंगहाली को बयां करती यह कविता अन्दर तक उद्वेलित कर देती है.

विश्व विख्यात कवि श्री लीलाधर मंडलोई की कविता की बानगी देखिए

पहले
माँ चाँवल में से कंकर बीनती थी

अब

कंकड में से चाँवल बीनती है.

यहाँ कंकड गरीबी का और चाँवल अमीरी का प्रतीक है. घर में जहां कभी सम्पन्नता थी, अब वहाँ गरीबी का ताण्डव है. दोनो ही परिस्थितियों को उजागर करती यह कविता आत्मा को हिलाकर रख देती है.

अपनी कविताओं में प्रतीक का उपयोग करने श्री अरुणचंद्र राय की एक कविता की बानगी देखिए.
"शर्ट की जेब/होती थी भारी/सारा भार सहती थी/कील अकेले

नए बिम्बों के प्रयोग में संदर्भ में इस कविता को देखें. उन्होंने कील को प्रतीक के रुप में लिया है. कील का विशिष्ठ प्रयोग यहां एक मानवीय संवेदना की प्रतिमुर्ति बनकर सजीव हो उठी है. जड-बेजान कील यहां कील न रहकर सस्वर हो जाती है.- एक नए अर्थ से भर उठती है. अपनी अर्थवत्ता से विविध मानसिक अवस्थाओं -आशाओं, आवेग, आकुलता, वेदना, प्रसन्नता, स्मृति, पीडा व विषाद आदि के मार्मिक चित्र उकेरती है.

कविता को पढते ही एक चित्र हमारी आंखों के सामने थिरकने लगता है. कील पर जो पिता की कमीज टंगी है, उस टंगी कमीज में निश्चित ही जेब भी होगी. और जेब है तो उसमें पैसे भी होंगे. वे कितने हो सकते है, कितने नहीं, इसे बालक नहीं जानता. संभव है वह खाली भी हो सकती है लेकिन उसके मन में एक आशा बंधती है कि जेब में रखे पैसों से चाकलेट खरीदी जा सकती है, पतंग खरीदी जा सकती है. और कोई खिलौना भी लिया जा सकता है. यह एक नहीं अनेक संवेदनाओं को एक साथ जगाता है. लेकिन बच्चा नहीं जानता कि उस जेब के मालिक अर्थात पिता को कितनी मुश्किलों का सामना करना पडा होगा, अनेक कष्टॊ को सहकर उसने कुछ रकम जुटाई होगी और तब जाकर कहीं चूल्हा जला होगा और तब जाकर कहीं वह अपने परिवार का उत्तरदायित्व संभाल पाया होगा.

अपने आशय को साफ़ और सपाट रुप में प्रस्तुत करने के बजाय कवि ने सांकेतिक रुप से उस मर्म को, बात की गंभीरता.को मूर्त जगत से अमूर्त भावनाओं को प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है.

शाश्वत सत्य की व्यंजना प्रस्तुत करना हो तो वह केवल और केवल प्रतीकों के माध्यम से की जा सकती है. ऎसा किए जाने से अर्थ की गहनता, गंभीरता तथा बहुस्तरीयता की संभावनाएं बढ जाती है

शंकरानन्द का कविता संग्रह "**दूसरे दिन के लिए**" एक नए तरह के प्रतीक और बिम्ब के जरिए प्रभावित कर देने वाला काव्य-लोक है. छोटी-छॊटी कविताएं अपने विन्यास में भले ही छोटी जान पडॆ, पर अपनी प्रकृति में अपनी रचनात्मक शक्ति के साथ, चेतना को स्पर्ष करती है और बेचैन भी. बानगी देखिए

माँ चुल्हा जलाकर बनाती है रोटी
या छौंकती है तरकारी
कुछ भी करती है कि
उसमें गिर जाता है पलस्तर का टुकडा
फ़िर अन्न चबाया नहीं जाता
पलस्तर एक दुश्मन है तो
उसे झाड देना चाहिए
मिटा देना चाहिए उसे पूरी तरह

डा रामनिवास मानव की काव्य रचनाओं में, वे कविता, दोहा, द्विपदी, त्रिपदी, हायकू आदि में से चाहे किसी भी विधा की क्यों न हो, प्रतीकों का सुदृढ एवं सार्थक प्रयोग करते हैं. प्रतीकों के माध्यम से वे ऎसा बिम्ब प्रस्तुत करते हैं, जिनमे यथार्थ हो, प्रतिभासित हो ही जाता है. पाठक की कल्पना भी अपना क्षेत्र विस्तृत करने के लिए विवश हो जाता है. उनकी एक जानदार कविता है-“शहर के बीच”. इसकी बानगी देखिए

जब भी निकलती है बाहर
कोई चिडिया घोंसले से
बाज के खूनी पंजे
दबोच लेते हैं उसे.

यहां बाज और चिडिया का प्रयोग बहुआयामी है. बाज-प्रशासक, शोषक या आतंकवादी कोई भी हो सकता है.
चिडिता- जनता शोषित या आतंकवाद का शिकार, कुछ भी हो सकता है.

इनकी काव्य रचना में दिन-रात, घटा-बिजली, बाघ-भेडिये, बन्दर-भालू, कौवे-बगुले, गिद्द-गिरगिट, फ़ूल-कांटे अदि न जाने कितने प्रतीक आते है और पूरी अर्थवत्ता के साथ आते हैं.

एक बानगी देखिए- कौवे,बगुले,गिद्द यहाँ हैं/ सारे साधक सिद्ध यहाँ है

डा. मानव की एक और रचना देखिए जिसमें प्रेमचंदजी का गाँव है. गाँव है तो उसमे होरी है, गोबर है. गरीबी है, मुफ़लिसी है, अभाव है, भूख है, मजबूरियां है. इतनी सारी बातें मात्र तीन लाइन मे कवि अपने अन्तरमन की बात,- अपने मन की पीडा कम से कम शब्दों में “प्रतीकों” के माध्यम से कह जाता है.

प्रेमचंद के गाँव मे
पडी है आज भी बेडियाँ
है होरी के पाँव में

(२)
भाग्य खिचता डोरियाँ
होरी तडपे भूख से
गोबर ढोता बोरियाँ

देश में नेताओ, दलालों, अफ़सरों आदि के कारनामे और व्ववस्था में आई गिरावट और विसंगतियों को देखकर वे लिखते हैं

धूर्त भेडिये/ और रंगे सियार/करते राज
तभी देश समूचा /लगे जंगल राज

(२) भालू के बाद बन्दर की बारी है
राजनीति के मंच पर घटिया प्रदर्शन जारी है.

मंगलेश डबराल की एक कविता (स्मृति से साभार)

रात भर हम देखते हैं
पत्थरों के नीचे
पानी के छलछला का स्वपन

यहाँ पत्थर कठोरता, पानी का छलछलाना करुणा का प्रतीक है.

श्रीकांत वर्मा “हस्तिनापुर” से साभार

संभव हो
तो सोचो
हस्तिनापुर के बारे में

जिसके लिए
थोडॆ-थोडॆ अंतराल में
लडा जा रहा है महाभारत. (यहाँ हस्तिनापुर प्रतीक है सत्ता का)

मंगलेश डबराल की एक कविता की बानगी देखिए.

मेरे बचपन के दिनों में
एक बार मेरे पिता एक सुन्दर सी टॉर्च लाये
जिसके शीशे में गोल खांचे बने हुए थे जैसे आजकल कारों कि हेडलाईट में होते हैं
हमारे इलाके में रोशनी कि वह पहली मशीन
जिसकी शहतीर एक चमत्कार कि तरह रात को दो हिस्सों में बाँट देती थी।
एक सुबह मेरी पड़ोस की दादी ने पिता से कहा
बेटा इस मशीन से चूल्हा जलाने कि लिए थोड़ी सी आग दे दो

पिता ने हंसकर कहा चाची इसमें आग नहीं होती सिर्फ उजाला होता है
यह रात होने पर जलती है
और इससे पहाड़ के उबड़-खाबड़ रास्ते साफ दिखाई देते हैं

दादी ने कहा बेटा उजाले में थोडा आग भी रहती तो कितना अच्छा था
मुझे रात को भी सुबह चूल्हा जलाने की फ़िक्र रहती है
घर-गिरस्ती वालों के लिए रात में उजाले का क्या काम
बड़े-बड़े लोगों को ही होती है अँधेरे में देखने की जरूरत
पिता कुछ बोले नहीं बस खामोश रहे देर तक।
इतने वर्ष बाद भी वह घटना टॉर्च की तरह रोशनी
आग मांगती दादी और पिता की ख़ामोशी चली आती है
हमारे वक्त की कविता और उसकी विडम्बनाओं तक

इसमें टार्च केवल एक प्रतीक भर है, लेकिन इसके भीतर से कितने कोलाज बनते हैं और एक नया अर्थ यहां देखने को मिलता है,

(२) चाहे जैसी भी हवा हो /यदि हमें जलानी है अपनी आग/ जैसा भी वक्त हो/ इसी में खोजनी है अपनी हँसी/ जब बादल नहीं होंगे/ खूब तारे होंगे आसमान में / उन्हें देखते हम याद करेंगे/ अपना रास्ता.

यहाँ हवा परिस्थितियों की प्रतीक है, आग क्रांति की और बादल परेशानियों का.

गोवर्धन यादव की एक कविता (शेरशाह सूरी के घोडे से साभार)

पत्र पाते ही खिल जाता है
उसका मुरझाया चेहरा
और बहने लगती है एक नदी हरहराकर
उसके भीतर.
(इसमे घोडे प्रतीक है जो उजाड और नीरस जीवन में खुशियां लाते है औरजिनके आते ही वह प्रसन्नता से भर उठती है

(२ मेरे अन्तस में बहती है एक नदी
ताप्ती
जिसे मैं महसूसता हूँ अपने भीतर
जिसकी शीतल, पवित्र और दिव्य जल
बचाए रखता है,मेरी संवेदनशीलता
खोह,कन्दराओं,जंगलों और पहाडों के बीच
बहती यह नदी
बुझाती है सबकी प्यास
और तारती है भवसागर से पापियों को
इसके तटबंधों में खेलते हैं असंख्य बच्चे
स्त्रियाँ नहाती हैं
और पुरुष धोता है अपनी मलीनता
इसके किनारे पनपती हैं सभ्यताएँ
और, लोकसंस्कृतियाँ लेती है आकार
लोकगीतों और लोकधुनों पर
मांद की थापों पर
टिमकी की टिमिक-टिमिक पर
थिरकता है लोकजीवन (यहाँ नदी एक प्रतीक के रुप में आती है) ०

पुलिस महानिदेशक श्रीविश्वरंजनजी की एक कविता की बानगी देखिए

वह लडकी नही पूछती है
यह सब अब
वह आँखें नीची रखती है
उसने खुद को बचा रखा है
बडे-बुजुर्गों के आदेशानुसार
आदिम बलि के लिए

वह लडकी सचमुच बडी हो गई
हर भारतीय कस्बे की लडकी की तरह
और

(२ आसमान से बाजारी शमशीर
खतरनाक तरीके से
काट रही थी हवा को
ऊर्जारहित, शक्तिहीन,तेजस्वितारहित
वह एक भारी झूठ-सा गडा रहा दलदल में
बाजार की मार झेलने के लिए/वह बेचारा आदमी

(३)मैं जानता हूँ बहुत गरीबी है
मैं जानता हूँ बहुत मुफ़लिसी है, यहाँ दर्द है,तडपन है..

बहुत अंदर से हार गई है.

चलो बाहों में बाहें डाल अपने अपने न बोले जाने वाले
सत्यों और अनुभूतियों के/
साथ घूम आयें क्षितिजों से पार

डा.बलदेव कि कविता की एक बानगी

पॆड छायादार, पेडों की संख्या में एक पेड और
बच्चा पूछ रहा- माँ कहाँ है ?
वृक्ष में तब्दील हो गयी, औरत के बारे में
मैं क्या कहूँ, कैसे कहूँ, वह कहाँ है

युवा कवि रोहित रुसिया की कविता की एक बानगी

सहेज लेना चाहता हूँ
अपने पिता की तस्वीर के साथ
थोडा सा धान और कुछ गेहूँ की बालियाँ
कि भरपूर हाईब्रीड के जमाने भी
मेरी आने वाली पीढियाँ महसूस कर सकें
अपनी जडों की महक

जब मिलेंगे हम दोनो
किसी ने कुछ भी नहीं कहा
तुम आयीं, बहने लगा झरना
तुम मुस्कुरायीं
खिल गए सारे फ़ूल
मैं चुपचाप महसूस करता रहा
वसन्त अपने भीतर

उपरोक्त कविताओं के माध्यम से हमने देखा की “प्रतीक” के माध्यम से हम अपने आशय को साफ़- सपाट रुप में प्रस्तुत करने की जगह सिर्फ़ सांकेतिक रुप में अर्थ की व्यंजना करते हैं तो हमारे कहन में अर्थ की गहनता, गंभीरता तथा बहुस्तरीयता बढ जाती है और साथ ही कविता का सौंदर्य भी. बस यहाँ ध्यान दिए जाने की जरुरत है कि कि कविता की विशिष्ट लय बाधित नहीं होनी चाहिए.

....